॥ श्रीहरिः ॥

174

भक्त-चन्द्रिका

(संक्षिप्त भक्त-चरित-माला ५)
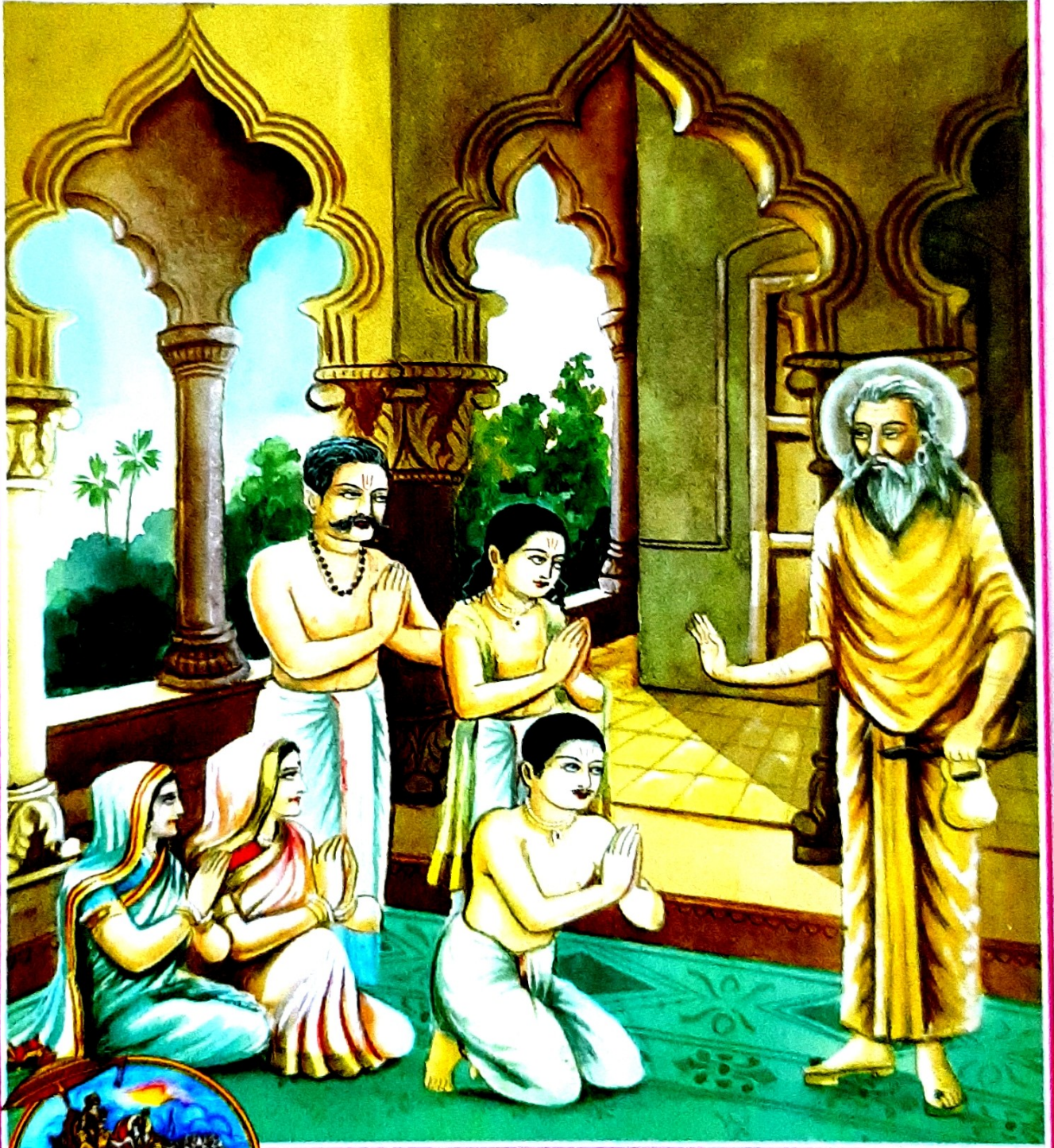
गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ-संख्या

॥ श्रीहरिः ॥

भक्त-चन्द्रिका

साध्वी सखूबाई

जिन्होंने अपनेको सब प्रकारसे प्रियतम परमात्माके चरणोंमें अर्पण कर दिया है, उनकी अपार महिमा है। ऐसे ही लोग यथार्थ संत हैं और ऐसे ही शान्त, दान्त, भगवत्परायण लोगोंको सुख पहुँचानेके लिये शान्त, शुद्ध, सच्चिदानन्दघन भगवान्‌को अनेक अवतार धारणकर विविध लीलाएँ करनी पड़ती हैं। ऐसा कोई भी कार्य नहीं है, जो भगवान् अपने प्यारे भक्तोंके लिये नहीं कर सकते। भक्तोंको विपत्तिसे मुक्त करनेके लिये, भक्तोंके अनोखे भावोंकी पूर्तिके लिये, भक्तोंकी महत्ताको बढ़ानेके लिये और भक्तोंके मनोरंजनके लिये भगवान् नीच-से-नीच कार्य करनेमें भी कोई संकोच नहीं करते। संत सखूबाईकी प्रेम-भक्तिके वश होकर भगवान्‌ने जो कुछ किया उसे पढ़-सुनकर तो हृदय भगवत्-प्रेममें विभोर हो जाता है।

महाराष्ट्रमें कृष्णा नदीके तीरपर करहाड नामक एक स्थान है। वहाँ एक ब्राह्मण रहता था, उसके घरमें कुल चार प्राणी थे—ब्राह्मण, उसकी स्त्री, पुत्र और साध्वी पुत्रवधू। ब्राह्मणकी पुत्रवधूका नाम ही सखूबाई था। सखू जितनी अधिक भगवान्‌की भक्त, सुशीला, विनम्र, आज्ञाकारिणी और सरलहृदया थी, उसकी सास उतनी ही अधिक दुष्टा, अभिमानिनी, कुटिला और कठोरहृदया थी। पति-पुत्र भी उसीके दुष्ट स्वभावका अनुसरण करनेवाले थे। तीनों मानो एक ही मालाके मनिये थे, वे अपनी

शक्तिभर सखूको सतानेमें कोई बात बाकी नहीं रखते थे। तड़केमें लेकर रातको सबके सो जानेके बादतक सखूको घरके सारे काम मशीनकी भाँति बिना विश्राम करने पड़ते थे। सखूका शरीर शक्तिसे कहीं अधिक परिश्रम करनेके कारण अस्वस्थ हो गया था, परन्तु वह काम करनेमें कभी आलस्य या कष्टका अनुभव नहीं करती थी। उसने इसको अपना कर्तव्य ही मान रखा था। मन-ही-मन भगवान्के त्रिभुवनमोहन स्वरूपका अखण्ड ध्यान और केशव, विट्ठल, राम, कृष्ण, गोविन्द आदि नामोंका प्रेमपूर्वक स्मरण करती हुई वह घरके काम-काजको बड़े ही सुचारुरूपसे किया करती थी, परन्तु सास तो अपने स्वभावसे लाचार थी, दिनभरमें दस-बीस बार सखूको और उसके माँ-बापको गालियाँ सुनाये और दो-चार लात-घूँसे लगाये बिना उसे संतोष नहीं होता था। बिना कसूर मार और गालियोंकी बौछार सखूके हृदयमें कभी-कभी क्षणभरके लिये शूलकी तरह चुभती थी, परन्तु वह अपने शील-स्वभाववश दूसरे ही क्षण उसे भूल जाती थी। सासके सामने वह कभी जबान नहीं खोलती। पतिके सामने भी दो बूँद आँसू निकालकर हृदयको शीतल करना उसके नसीबमें नहीं था; क्योंकि वह भी अपनी माताके सदृश सखूपर सदा खड्गहस्त ही रहा करता था। अधिक क्या, निर्दयहृदया पिशाचिनी बुढ़िया सखूको पेटभर खानेको भी नहीं देती थी। घरमें अनेक पदार्थ बनते और सखूको ही वे बनाने पड़ते, माता-पिता और पुत्र सुखपूर्वक उनसे अपने पापी पेटोंको भर लेते, परन्तु सखूको तो चौबीस घंटेमें वही एक वक्त बासी टुकड़े मिलते। इतना होनेपर भी सखू अपने दारुण दु:खोंको भगवान्का आशीर्वाद समझकर उन्हें सुखरूपमें परिणत कर सदा प्रसन्न रहती। सखूकी दशापर गाँवके स्त्री-पुरुषोंको तरस आता,

परन्तु वे भी बिना बात लड़नेको कमर बाँधे रहनेवाले ब्राह्मण-ब्राह्मणीके डरसे कुछ कह नहीं सकते। सखू मन-ही-मन भगवत्कृपाका अनुभव करती हुई सोचती कि भगवान्‌ने बड़ा ही अच्छा किया जो मुझे इस घरमें भेजा, कहीं मुझपर अनुराग करनेवाले सास-ससुर और स्वामी मिल जाते तो मैं मोहवश मायाजालमें फँस गयी होती। यों विचार करती-करती वह आनन्दमग्न हो जाया करती और भगवान्‌के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करती।

एक दिन पड़ोसिनने मौका पाकर उससे पूछा, 'बहिन! क्या तेरे नैहरमें कोई नहीं है? तू इतना दुःख भोगती है, परन्तु वे कभी तेरी खोज-खबर ही नहीं लेते।'

सखूने मुसकराते हुए कहा, 'मेरा नैहर पण्ढरपुर है और वह यहाँसे बहुत दूर है। मेरे माँ-बाप श्रीरुक्मिणी-कृष्ण हैं, उनके असंख्य संतान हैं, मालूम होता है, इसीलिये वे मुझे भूल गये हैं, परंतु कभी-न-कभी तो अवश्य ही बुलाकर मेरा दुःख दूर करेंगे!'

पण्ढरपुर महाराष्ट्रका प्रसिद्ध तीर्थ है। यहाँ आषाढ़ शुक्ला एकादशीको बड़ा भारी मेला लगता है। भगवान् पण्ढरीनाथ श्रीविट्ठलके दर्शनार्थ लाखों नर-नारी दूर-दूरसे भगवन्नाम-कीर्तन करते हुए वहाँ आते हैं, पण्ढरपुरकी यात्राके दिन आ गये। भक्तोंकी यात्रा शुरू हो गयी, चारों ओरसे दल-के-दल श्रद्धालु नर-नारी हाथमें छोटी-छोटी पताकाएँ लिये भगवन्नामका कीर्तन करते हुए जा रहे हैं। मृदंग, करताल और झाँझकी एकस्वर मधुर ध्वनिसे आकाश गुंजायमान हो रहा है। पैरोंमें घुँघुरू बाँधे प्रेम-मतवाले भक्तगण नाच रहे हैं। श्रीहरिके गुणगान और चरित्र-कीर्तनसे लोग आनन्द-सिन्धुमें डूबे जा रहे हैं, मानो साक्षात् नादब्रह्म ही मूर्तिमान् होकर प्रकट हो गये हैं।

इसी प्रकारके भक्तोंके कुछ दल कर्‌हाड होकर जा रहे थे। सखूबाई उस समय पानी भरने कृष्णा नदीके तटपर गयी थी। प्रेमी-भक्तोंके संकीर्तन-दलको देखकर सखूके हृदयमें प्रेम उमड़ उठा। उसकी पण्ढरपुर जानेकी प्रबल इच्छा हो गयी। उसने सोचा कि घरवालोंसे आज्ञा प्राप्त करना तो मेरे लिये असम्भव है, बात पूछते ही मार और गालियोंकी बौछार शुरू हो जायगी, परन्तु पण्ढरपुर जाना निश्चय है, अतः यहींसे इस संतमण्डलीके साथ चली जाऊँ तो अच्छा है। यह विचारकर सखू संतमण्डलीके साथ हो ली। पड़ोसिनने जाकर यह समाचार उसकी दुष्टा सासको सुनाया। वह सुनते ही जहरीली नागिनकी तरह फुफकार उठी और सिखा-पढ़ाकर उसी समय लड़केको कृष्णाके किनारे भेजा। क्रोधसे आग-बबूला हुआ वह दौड़कर नदी-तीरपर आया और सखूकी चोटी पकड़कर उसे घसीटते एवं मारते-पीटते घर ले गया। गालियोंकी पुष्पांजलि तो सारे रास्ते चढ़ ही रही थी। तीनों निर्दय-हृदय मिलकर सोचने लगे कि 'यह तो बिलकुल बेकाबू हुई जा रही है, अब मामूली मार-पीटसे काम नहीं चलेगा, यह सीधी राहसे माननेवाली नहीं।' मार-पीट तो उनके मन सीधी राह थी। अन्तमें उन्होंने निश्चय किया कि अभी पण्ढरपुरकी यात्रा दो सप्ताहतक जारी रहेगी, इसलिये इस बीच इसे जकड़कर खम्भेसे बाँध रखना चाहिये और खानेको रोटी बिलकुल नहीं देनी चाहिये। ऐसा करनेपर यह जरूर सीधी हो जायगी। निश्चयके अनुसार ही काम भी तुरंत किया, उन्होंने मिलकर सखूको बड़ी ही निर्दयतासे बाँध दिया। रस्सीसे इतने जोरसे खींचकर बाँधी गयी कि सखूके सूखे शरीरमें उससे गड्‌हे पड़ गये।

सखूका शरीर बँध गया; परन्तु उसके मनको कोई नहीं बाँध सका, वह तो सारे बाँध तुड़ाकर पहले ही भगवान्के चरणोंतक पहुँच चुका था। द्वापरयुगकी बात है, व्रजभूमिके अंदर विद्यामदमें चूर एक याज्ञिक ब्राह्मणने भी अपनी साध्वी पत्नीको इसी प्रकार श्रीकृष्णदर्शनार्थ जानेसे रोककर कोठरीमें बंद कर दिया था; परंतु उसका मन भगवान्में लग चुका था, इससे वह अपने शरीरको वहीं छोड़कर सबसे पहले श्रीहरिसे जा मिली थी। आज सखू भी बँधकर कुछ भी दुःखका अनुभव नहीं करती हुई भगवान्से कहती है—'भगवन्! कृपा करो, मैंने अपनेको तुम्हारे चरणोंसे बाँधना चाहा था, परंतु बीचमें ही यह नया बन्धन कैसे हो गया? क्या इन नेत्रोंसे तुम्हारे पण्ढरपुरी रूपके दर्शन नहीं होंगे? प्रभो! मुझे मरनेकी चिन्ता नहीं है, न मुझे कोई कष्ट ही है। एक बार ये नेत्र तुम्हारा चरणदर्शन कर कृतार्थ होना चाहते थे, इतना होनेपर प्राण निकलते तो इनकी इच्छा पूर्ण हो जाती। हे मेरे जीवनधन! हे जगज्जीवन!! तुमसे कुछ भी छिपा नहीं है। मेरे तो माँ-बाप, भाई-बहिन, इष्ट-मित्र—जो कुछ हो—सब तुम्हीं हो, मैं भली-बुरी जो कुछ हूँ, तुम्हारी ही हूँ। क्या मेरी इतनी-सी बात नहीं सुनोगे दयामय!'

हे निर्गुण, हे सर्वगुणाश्रय, हे निरुपम, हे उपमामय!
हे अरूप, हे सर्वरूपमय, हे शाश्वत, हे शान्ति-निलय!!
हे अज, आदि, अनादि, अनामय, हे अनन्त, हे अविनाशी!
हे सच्चित्-आनन्द-ज्ञान-घन द्वैत-हीन घट-घटवासी!!
हे शिव, साक्षी, शुद्ध सनातन, सर्वरहित हे सर्वाधार!
हे शुभमन्दिर, सुन्दर, हे शुचि, सौम्यसाम्यमति, रहितविकार!!
हे अन्तर्यामी, अन्तरतर, अमल, अचल, हे अकल अपार!
हे निरीह, हे नर-नारायण, नित्य, निरंजन, नव-सुकुमार!!

हे नव-नीरद-नील, नराकृति, निराकार, हे नीराकार!
हे समदर्शी, संत-सुखाकर, हे लीलामय, प्रभु साकार!!
हे भूमा, हे विभु, त्रिभुवनपति, सुरपति, मायापति, भगवान!
हे अनाथपति, पतित-उधारन, जन-तारन, हे दयानिधान!!
हे दुर्बलकी शक्ति, निराश्रयके आश्रय, हे दीन-दयाल!
हे दानी, हे प्रणत-पाल, हे शरणागत-वत्सल, जन-पाल!!
हे केशव, हे करुणासागर, हे कोमल अति सुहृद महान!
करुणा कर अब उभय अभय चरणोंमें मुझे दीजिये स्थान!!
सुर-मुनि-वन्दित, कमलानन्दित, चरण-धूलि तब मस्तक धार!
परम सुखी हो जाऊँगी मैं हूँगी सहज भवार्णव पार!!

भक्तके अन्तस्तलकी सच्ची पुकार कभी व्यर्थ नहीं जाती। भगवान् सब सुनते हैं; परन्तु नकली पुकारका जवाब नहीं देते। असली पुकार चाहे जितनी धीमी हो, वह त्रिभुवनको भेदकर भगवान्के कर्णछिद्रमें तुरंत प्रवेश कर जाती है और उनके हृदयको उसी क्षण द्रवीभूत कर देती है।

सखूकी आर्त पुकारसे भगवान्का आसन हिल गया, नाथके मुखमण्डलपर उद्विग्नता छा गयी। जगज्जननी रुक्मिणीजी भगवान्की उदासीका कारण जानती हैं। सदा प्रसन्नरूप श्रीहरिके उदास होनेकी किसी भी अवस्थामें कोई सम्भावना नहीं, परन्तु जब कोई भक्त उदास होता है तो उसकी उदासीका हूबहू चित्र उनके मुख-मण्डलपर तुरंत खिंच जाया करता है। इसीसे देवीने पूछा—'भगवन्! आज किस भक्तकी बुलाहट है? किस भक्तको आज दुष्टोंने सताया है?' भगवान् बोले—'प्रिये! अधिक बात करनेका समय नहीं है, सखूबाई नाम्नी मेरी एक भक्त है। वह हमारे दर्शनार्थ पण्ढरपुर जा रही थी, उसकी दुष्ट सास और पतिने उसे बाँध रखा है, मुझे तुरंत

वहाँ जाना है।' भगवान्‌का कहीं जाना-आना कैसा? यह तो भक्तोंके साथ उनका विनोद है।

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

जहाँ प्रेम होता है वहीं प्रेमी प्रभु प्रकट हो जाते हैं। बस, सुन्दर स्त्रीका रूप धारणकर भगवान् उसी क्षण सखूके पास जा पहुँचे और बड़ी ही मधुर वाणीसे बोले—'बाई मैं पण्ढरपुर जा रही हूँ, क्या तू वहाँ न चलेगी?' सखूने उदास होकर कहा—'जाना तो चाहती हूँ; परंतु कैसे जाऊँ? मैं तो यहाँ बँध रही हूँ। मुझ पापिनीके भाग्यमें पण्ढरपुरकी यात्रा कहाँ है?' स्त्रीरूपी भगवान्‌ने कहा—'बाई! मैं तेरी सदाकी सहचरी हूँ, तू उदास क्यों हो रही है। तेरे बदले मैं यहाँ बँध जाऊँगी, तू चिन्ता न कर।' सखूबाई बदलेमें कुछ कहने ही नहीं पायी कि भगवान्‌ने उसके बन्धन खोल दिये और देखते-ही-देखते उसे पण्ढरपुर पहुँचा दिया। अहा! आज सखूके सौभाग्यका क्या ठिकाना है? स्वयं नारायण अपने हाथों उसे बन्धनमुक्त कर रहे हैं। आज सखूका केवल यही बन्धन नहीं खुला, उसके सारे बन्धन सदाके लिये खुल गये। वह मुक्त हो गयी। धन्य भगवन्!

प्रेमपाशमें बँधे हुए भगवान् सखूका स्वरूप धारणकर उसकी जगह स्वयं बँध गये। जिनके नाम-स्मरणमात्रसे मायाके दृढ़ बन्धन पटापट टूट जाते हैं, आज वही सच्चिदानन्दघन भक्तके लिये स्वयं बन्धन स्वीकार करते हैं। एक दिन आप यशोदा मैयाके द्वारा ऊखलमें बँधे थे, प्रेममयी गोपिकाओंने तो न मालूम कितनी बार आपको बाँधा था, परंतु आजका यह बन्धन सबसे अनोखा है। वहाँ तो आप बालक बने थे, सबको तंग करते थे, तब बँधना पड़ा था; यहाँ तो अपनी भक्त सखूबाईके लिये

सखूबाई बनकर बँधना पड़ा है। भक्तप्रेमाधीन होकर आपको सब कुछ करना पड़ता है।

सखूबाई बने नाथ बँध रहे हैं। सखूबाईके निर्दयी सास-ससुर और निष्ठुर स्वामी बार-बार आते हैं और मनमानी गालियाँ बक जाते हैं। भगवान् सुशीला वधूकी भाँति सब कुछ सह लेते हैं। इस प्रकार बँधे हुए पूरे पंद्रह दिन बीत गये। सास-ससुरका मन तो इतनेपर भी नहीं पसीजा; परंतु सखूके पतिके मनमें यह विचार आया कि पूरे दो सप्ताह इसको बिना अन्न-जल ग्रहण किये बीत गये हैं, कहीं बँधी-की-बँधी ही मर गयी तो मुश्किल होगी। हम अपनी करतूतोंसे गाँवभरमें प्रसिद्ध हो चुके हैं, ऐसा कौन है जो मेरी और मेरे माँ-बापकी काली कीर्ति न सुन चुका हो। यह मर गयी तो दूसरा विवाह होना असम्भव ही है। हजारों रुपये देनेपर भी कोई अपनी लड़की देनेको राजी न होगा। इन सब स्वार्थके विचारोंके साथ ही बँधी हुई इस सखूके पास जानेसे कई बार उसके मनमें कुछ आकर्षण भी हो गया था, सखूरूपी भगवान्‌के उदास मुखमण्डलको देखकर उसके हृदयमें दया उत्पन्न हो गयी और उसे अपनी क्रूर करतूतोंपर पश्चात्ताप होने लगा था। अब उससे नहीं रहा गया, उसने आकर सारे बन्धन काट दिये और बड़े ही मीठे वचनोंसे सान्त्वना देने लगा। उसने कहा—'प्रिये! मैं बहुत ही निष्ठुर हूँ, मेरे माता-पिताने भी तुझे बहुत सताया है, तुम तो सती हो, मुझपर क्षमा करो और शीघ्र स्नान करके कुछ खाओ।'

भवबन्धनहारी, अनन्त आनन्दके सागर भगवान् ठीक पतिव्रता पत्नीकी भाँति शान्त और विनम्रभावसे मानो संतुष्ट होते हुए सिर नीचा किये खड़े रह गये। भगवान्‌ने सोचा कि यदि मैं अभी अन्तर्धान हो जाऊँगा, तो ये दुष्ट सखूको लौटनेपर फिर सतावेंगे।

इससे उसके लौटनेतक यहीं ठहरना चाहिये। ठीक है नाथ! यहीं रहिये, जब आपने सखूके बदले बन्धन स्वीकार किया तो अब अपनी सखूके स्वामीकी पत्नी बननेमें क्या संकोच है?

पतिके आज्ञानुसार सखूरूपी भगवान्‌ने स्नानकर रसोई बनायी और स्वयं अपने हाथसे तीनोंको जिमाया। आजके भोजनका स्वाद कुछ विलक्षण ही था। पुत्र और माता-पिता तीनोंने बड़ी सराहना करते हुए भोजन किया। पुत्रवधूके बनाये भोजनकी सराहना करनेका सास-ससुरके लिये जीवनमें यह पहला ही अवसर था। क्यों न हो, आज पुत्रवधूके रूपमें माधुर्यके निधि भगवान् स्वयं विराजमान थे और अपने हाथसे भोजन करा रहे थे। अहा! सखूके संगसे ऐसे दुष्ट भी भगवान्‌के सेवा-पात्र बन गये।

सबके बाद सखूरूपी भगवान्‌ने भोजन किया। सारा दिन घरके काम-काजमें बीता। पानी भरना, झाड़ू देना, चक्की पीसना, बरतन माँजना, चौका देना, सासके पैर दबाना आदि सारे कार्य भगवान् बड़ी ही दक्षतासे करने लगे। चतुरचूडामणि ही तो ठहरे! जिन्होंने व्रजके बालकों और बछड़ोंके बदलेमें सालभरतक विविध रूपधारी बालक और वत्स बनकर अपनी-अपनी माताओंको सुख दिया था, उनके लिये वहाँ वधू बनकर पति और सास-ससुरको सुखी करना कौन बड़ी बात थी। आपने रातको शयनागारमें पतिके पैर दबाकर उसकी यथेच्छ सेवा की और उसे संतुष्ट किया। स्त्री-पुरुषका भेद भगवान्‌की दृष्टिमें कुछ भी नहीं है। जो सबके अन्तरात्मा हैं; जो स्त्री-पुरुष, नपुंसक समस्त शरीरोपाधियोंके एकमात्र अधिष्ठान हैं, जो सर्वमय, सर्वसाक्षी और सर्वाधार हैं, जो अज, अव्यय रहते हुए ही जन्म लेकर विविध लीला करते हुए-से दिखायी देते हैं, जो

समस्त चराचरके रूपमें अभिव्यक्त हो रहे हैं, उन परमात्मामें स्त्री-पुरुषका भेद कैसा? कुम्हार मिट्टीका घड़ा भी बनाता है और हाँड़ी भी, सुनार सोनेका कड़ा भी बनाता है और कण्ठी भी, यह लिंगभेद नाममें है, न कि अधिष्ठानरूप मिट्टी या सोनेमें। आकाश सर्वत्र एकरूप होनेपर भी उसमें ध्वनि नाना प्रकारकी सुनायी पड़ती है, इसी प्रकार भगवान् भी उपाधिभेदसे ही अनन्त प्रकारके भासते हैं, वास्तवमें तत्त्वतः वे एक ही हैं। अस्तु। सखूरूपी भगवान्ने अपनी सेवा और सुन्दर व्यवहारसे पति और सास-ससुरको संतुष्ट कर लिया। अब वे सब प्रकारसे इस सखूके अनुकूल हो गये। उनके स्वभावमें विलक्षण परिवर्तन हो गया। ठीक ही है, अब भी परिवर्तन न होता तो फिर होता ही कब?

उधर सखू पण्ढरपुर पहुँचकर भगवन्नामके आनन्दमें मग्न हो गयी। भगवान्की मायासे वह इस बातको भूल गयी कि मेरे बदलेमें कोई दूसरी स्त्री वहाँ बँधी है और मैं यहाँ आ गयी हूँ। उसने देखा, भक्तगण हाथोंमें निशान लिये ताल-मृदंग और झाँझ बजाते हुए, नामका घोष करते हैं और मस्त हुए नृत्य कर रहे हैं। आज छोटे-बड़े और ऊँचे-नीचे, अमीर-गरीब और ब्राह्मण-शूद्रका कोई भेद नहीं रह गया है। सभी प्रेममें मत्त हो रहे हैं, भगवन्नामकी तुमुल गर्जनासे, आकाश प्रकम्पित हो रहा है। इस आनन्दरसमें विभोर हुई सखूबाई चन्द्रभागामें स्नान करके भगवान् पण्ढरीनाथके दर्शनार्थ मन्दिरकी ओर चली। मन्दिरमें जाकर भगवान्के दर्शन कर वह आनन्दसिन्धुमें डूब गयी। भगवान्की श्यामसुन्दर मनोहर मूर्ति है—आप दिव्य पीताम्बर धारण किये हुए हैं, परम सुन्दर श्रीमुख है, कानोंमें दिव्य मकराकृत कुण्डल हैं, वक्षःस्थलपर सुगन्धित पुष्प और तुलसीकी माला सुशोभित

हो रही है। इस रूपमाधुरीको भक्तदृष्टिसे देखते ही सखू मुग्ध हो गयी, उसके त्रिताप सदाके लिये शान्त हो गये, वह अपने देहकी सुध-बुध भूल गयी। वहाँ उसका मन ऐसा लगा कि उसने भगवान्‌के सामने यह प्रतिज्ञा कर ली कि जबतक इस शरीरमें प्राण हैं तबतक पण्ढरपुरकी सीमाके बाहर नहीं जाऊँगी। उसे क्या पता था कि मेरे बदलेमें मेरे नाथ वहाँ सासके सामने बहू सजकर संसार चला रहे हैं। प्रेममुग्धा सखू भगवान् पाण्डुरंगके ध्यानमें संलग्न हो गयी। उसे समाधि हो गयी। अन्तमें अष्ट सात्त्विक भावोंमें अन्तिम भावका उदय हो गया, जिससे सखूके प्राण कलेवरको छोड़कर निकल भागे। शरीर अचेतन होकर जमीनपर गिर पड़ा।

दैवसंयोगसे यात्रा करनेको आया हुआ कर्‌हाडके निकटवर्ती किवल नामक गाँवका एक ब्राह्मण उधरसे आ निकला। उसने सखूकी लाशको पहचानकर अपने साथियोंको बुलाया और सबने मिलकर उसका अन्त्येष्टि संस्कार कर दिया। इधर जगज्जननी रुक्मिणीजीने सोचा कि 'यह तो खूब रही। इसने तो यहाँ प्राण छोड़ दिये, उधर इसकी जगह मेरे स्वामी बहू बने बैठे हैं! बेढब फँसावट हुई।' यह विचारकर रुक्मिणीजी श्मशानमें पहुँचीं और सखूकी अस्थियोंका संचय कर अपनी इच्छासे ही उसे जीवित कर दिया। जिन मायादेवीके प्रतापसे समस्त ब्रह्माण्डकी रचना और विनाश होता है, जो निर्गुणको सगुण और अविकारीको विकारी-सा बनाकर दिखा देती हैं, जो बिना ही हुए नाना दृश्य उत्पन्न कर देती हैं, उन महामायाकी अमृत-वृष्टिसे सखूके जीवित हो जानेमें कौन आश्चर्य है?

सखू नींदसे जागनेकी भाँति उठ बैठी। रातको स्वप्नमें जगन्माताने उससे कहा कि—'पुत्री! तेरा प्रण तो यही था न कि

मैं इस देहसे पण्ढरपूरसे बाहर नहीं जाऊँगी। तेरा वह शरीर तो जलाया जा चुका है, यह दूसरा देह है, अतएव तू घर लौट जा, तेरा कल्याण होगा।' इस आदेशको पाकर सखू दो दिन बाद यात्रियोंके साथ कर्‌हाड लौट आयी। सखूका आना जानकर सखूवेषधारी नारायण पानीका घड़ा लेकर घाटपर चले आये और पूर्वपरिचित सखीका वेष धारणकर सखूसे जा मिले। उन्हें देखते ही सखूको सारी बातें याद हो आयीं। वह पश्चात्ताप और कृतज्ञता प्रकट करती हुई चरण पकड़कर बोली—'बहिन! तुम्हें बड़ा कष्ट हुआ होगा, तुम मेरे बदले बन्धनमें रही। मैंने तो तुम्हारी ही कृपासे भगवान्‌के दर्शन किये हैं। तुम्हारे उपकारका बदला नहीं चुका सकती।' दो-चार मीठी-मीठी बातें बनाकर भगवान्‌ने कहा कि 'ले यह घड़ा तू ले जा; मैं जाती हूँ'। इतना कहकर वे तो अदृश्य हो गये। सखू घड़ा उठाकर घर पहुँची और स्वाभाविक ही अपने घरके काममें लग गयी। सास-ससुर और स्वामीके स्वभावमें विचित्र परिवर्तन देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ।

दूसरे दिन किवल गाँवका वह ब्राह्मण सखूके मरनेका समाचार सुनाने कर्‌हाड आया। उसने सखूके घर पहुँचकर सखूको घरका काम करते देखा तो उसके आश्चर्यका पार नहीं रहा, वह सखूके ससुरको बाहर बुलाकर कहने लगा, 'तुम्हारी बहू तो पण्ढरपुरमें मर गयी थी, उसे तो हम जलाकर आये हैं। यहाँ उसे तुम्हारे घरमें काम करते देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है, कहीं प्रेत होकर तो वह यहाँ नहीं आ गयी?' सखूके ससुर और पतिने कहा कि वह 'पण्ढरपुर गयी ही नहीं, तुम भूलसे ऐसा कहते हो।' आखिर ब्राह्मणके बहुत कहनेपर ससुरने सखूको अपने पास बुलाकर पूछा कि 'बहू! तुमको तो हमने यहाँ

बाँध रखा था, ये कहते हैं कि तुम पण्ढरपुरमें मर गयी थी—यह कैसी बात है?' सखूने कहा कि 'मेरे ही-जैसी एक स्त्री यहाँ आकर स्वयं बँध गयी थी और मुझे छुड़ाकर वहाँ भेज दिया था। मैं पण्ढरपुर जरूर गयी थी और वहाँ एक दिन मुझे बेहोशी भी हुई थी। पीछे स्वप्नमें मालूम हुआ कि मैं मर गयी थी; परन्तु माता रुक्मिणीजीने मुझे जिला दिया। यहाँ लौटनेपर वह स्त्री कृष्णा नदीके घाटपर मुझे घड़ा देकर चली गयी। हो-न-हो वह मेरे नाथ श्रीपाण्डुरंग थे। आपलोगोंका बड़ा सौभाग्य है, जो आपने उनके दर्शन पाये।' यह सुनते ही सखूके सास-ससुर और स्वामीको बड़ा ही पश्चात्ताप हुआ। वे कहने लगे कि 'निश्चय ही वे साक्षात् लक्ष्मीपति थे; हम बड़े ही नीच और भक्तिहीन हैं, हमने उनको न पहचानकर व्यर्थ ही बाँध रखा और उन्हें न मालूम कितने क्लेश दिये।' तीनोंका हृदय शुद्ध हो ही चुका था। अब वे भगवान्‌के भजनमें लग गये और सखूका बड़ा ही उपकार मानने लगे। भगवान् भक्तोंके लिये क्या नहीं करते! सच्चा प्रेम होना चाहिये, फिर भगवान्‌के वश होते देर नहीं लगती। वे न जाति-कुल देखते हैं और न ऊँच-नीच कार्यका विचार करते हैं। वास्तवमें भगवान् और भक्तमें कोई भेद नहीं है। वह विश्वव्यापक सच्चिदानन्द जगदीश्वर ही भक्तरूपमें विचरते हैं और असंख्य अज्ञानीजनोंको भक्तिके सुखमय मार्गपर लाकर उनका उद्धार कर देते हैं। धन्य!

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!
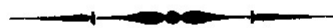
है, यह मूर्ख तो मेरी विद्वत्तापर कलंक लगानेवाला होगा, इतनेमें ही ज्योति उनके सामने आ गया, उसे देखकर पण्डितजीको दुःखके मारे गुस्सा आ गया और उन्होंने 'इस घरमें रहना है तो विद्या पढ़कर आओ' कहकर उसे घरसे निकाल दिया। इस समाचारसे ज्योतिकी माताको बड़ा दुःख हुआ, उसने रोकर पतिसे कहा कि 'स्वामिन्! आपने यह क्या किया? मेरा ज्योति मूर्ख है; पर मेरे तो हृदयका वही एकमात्र अवलम्बन है! इकलौते लड़केको घरसे निकालते आपको दया नहीं आयी? वह कहाँ गया होगा; क्या करता होगा, उसे कौन खानेको देगा? आप पता लगाकर उसे लाइये। उसे आँखोंसे देखे बिना मैं अन्न ग्रहण नहीं करूँगी। इतना कहकर वह रोने लगी। पत्नीकी दशा देखकर और उसकी बातें सुनकर गोपालजीका हृदय भी पसीज गया, उनकी आँखोंसे आँसूकी बूँदें टपक पड़ीं। वे पुत्रको खोजने निकले; परंतु कहीं पता न लगा। उन्हें क्या मालूम था कि मेरी यह निष्ठुरता ही पुत्रके परम कल्याणका कारण बनेगी।

(२)

ज्योतिपन्त घरसे निकाला जाकर अपने मित्रोंके पास आया और उन्हें साथ लेकर जंगलमें गया। गाँवके बाहर गणेशजीका एक जीर्ण मन्दिर था। श्रीगणेशजीके दर्शन कर ज्योतिपन्तने सरल विश्वास और दृढ़ निश्चयके साथ कहा—'अहा! ये तो विद्याके दाता गणेशजी ही मिल गये। अब क्या चिन्ता है? इनसे चौदह विद्या और चौंसठ कलाएँ माँग लेंगे। यह दयालु क्या इतनी-सी दया हमलोगोंपर नहीं करेंगे?' लड़कोंने भी ज्योतिपन्तकी बातका समर्थन किया। तब ज्योतिपन्तने कहा कि 'अच्छा तो अब श्रीगणेशजीकी कृपा न होनेतक हमलोगोंको परम श्रद्धाके साथ यहीं बैठकर उनका स्तवन करना चाहिये।' साथियोंने कहा

महाभागवत श्रीज्योतिपन्त

(१)

अठारहवीं शताब्दीकी बात है। महाराष्ट्र प्रान्त सतारा जिलेके बिटे नामक गाँवमें गोपालपन्त नामक एक गरीब ब्राह्मण ग्रामके बालकोंको पढ़ाकर अपना काम चलाते थे। गोपालजी पढ़ानेमें बड़े ही चतुर थे। उस समय विश्वविद्यालयोंकी परीक्षा तो नहीं थी; परन्तु इन त्यागी गरीब गुरुओंसे शिक्षा पाये हुए विद्यार्थी जिस यथार्थ योग्यताको पाते थे, आजके डिग्रीधारी लोग अपने नामके पीछे कई अक्षर जोड़ लेनेपर भी उस योग्यतासे प्रायः वंचित ही रहते हैं। उनके सदाचार, शील, तप, धर्मपरायणता, सरलता, श्रद्धा, संयम आदिकी तुलनामें तो आजका विद्यार्थी-समुदाय रखा ही नहीं जा सकता। पन्तजीकी पाठशालासे भी ऐसे बड़े-बड़े विद्वान् निकले थे।

पन्तजीके एक लड़का था, जिसका नाम था ज्योतिपन्त। पण्डितजी सभी लड़कोंको बड़े परिश्रमसे पढ़ाते थे, फिर अपने पुत्रके लिये तो कहना ही क्या था? वे जी-जानसे परिश्रम करके उसे अपनेसे बढ़कर विद्वान् बनाना चाहते थे; परंतु दैवकी इच्छा कुछ और ही थी। ज्योतिपन्तकी उम्र बीस सालकी पूरी हो गयी; परन्तु पढ़नेके नामपर उसने सिवा राम-नाम लेनेके और कुछ भी नहीं पढ़ा। ज्योतिपन्तका यज्ञोपवीत-संस्कार होनेपर पिताने लगातार छः महीनेतक उसे तीनों समय सन्था दी; परंतु गायत्रीका मन्त्र भी याद नहीं हुआ। लड़केकी ऐसी मन्द बुद्धि देखकर गोपालपन्तको जो दुःख होता था, उसका अनुमान कोई वैसा ही विद्वान् पिता कर सकता है। एक दिन पन्तजी उद्विग्न होकर विचार कर रहे थे कि ऐसे पुत्रसे तो पुत्रहीन रहना अच्छा

कि 'यह हमसे नहीं होगा; तेरी इच्छा हो तो तू चाहे यहाँ बैठा रह, हमलोग तो यहाँ नहीं रहेंगे। पहले ही बहुत देर हो गयी है, यदि थोड़ा-सा भी समय और बीत गया तो हमारे माता-पिता बहुत नाराज होंगे।' यों कहकर वे सब वहाँसे जाने लगे, ज्योतिपन्तने उन लोगोंको बहुत समझाया-बुझाया; परन्तु किसीने उसकी बात नहीं मानी। अन्तमें ज्योतिपन्तने कहा कि 'भाइयो! तुमलोग जाना ही चाहते हो तो जाओ; मैं तो यहीं बैठूँगा। जबतक गणेशजी दर्शन नहीं देंगे, यहीं बैठा रहूँगा। परंतु इस मन्दिरका दरवाजा बंद करके उसे चूने-मिट्टीसे लीप दो, जिससे बाहरका कोई आदमी मुझे देख न सके और गाँवमें जाकर मेरे सम्बन्धमें किसीसे कुछ कहना नहीं।' लड़कोंने प्रतिज्ञा की और मन्दिरका दरवाजा बंद करके उसे भलीभाँति लीप-पोतकर सब अपने-अपने घरोंको चले गये। किसीने भी ज्योतिपन्तके बारेमें किसीसे कुछ नहीं कहा।

पुत्रका पता न लगनेसे माता-पिताके क्लेशका पार नहीं रहा। पुत्र-वियोगमें दोनोंके दिन-रात रोते बीतने लगे। लगातार छः दिन हो गये, घरमें चूल्हा नहीं जला। छठी रातको गोपालजीको स्वप्नमें श्रीशिवजीने दर्शन देकर कहा, 'तुमलोग चिन्ता न करो। मेरी कृपासे तुम्हारा पुत्र बड़ा ही भक्त और यशस्वी होगा।'

इधर छः दिनोंसे ज्योतिपन्त मन्दिरमें एकासनपर बैठा श्रीगणेशजीका ध्यान-स्तवन कर रहा है। छः दिनोंमें उसे भूख-प्यासने बिलकुल नहीं सताया। वृत्तियाँ पूर्णरूपसे श्रीगणेशजीमें लग गयीं। सातवें दिन चतुर्भुजधारी श्रीगणेश महाराजने साक्षात् प्रकट होकर अपना वरदहस्त ज्योतिपन्तके मस्तकपर रखकर उससे मनमाना वर माँगनेको कहा। ज्योतिपन्त चेतना-लाभकर भगवान् श्रीगणेशजीके चरणोंपर गिर पड़ा और बोला कि 'प्रभो!

पहले तो मेरी विद्यालाभकी इच्छा थी; परंतु अब तो मैं केवल तत्त्वज्ञान और निष्काम प्रेमाभक्तिकी भीख चाहता हूँ, इसके अतिरिक्त मुझे और कुछ नहीं चाहिये। हे कृपासागर! मेरी इतनी-सी इच्छा आप पूर्ण कर दें।' श्रीगणेशजी ज्योतिपन्तकी प्रार्थना सुनकर बड़े ही प्रसन्न हुए और उसकी जीभपर 'ॐ' लिखकर उससे कहने लगे—'तेरी पूर्व इच्छानुसार तुझे विद्या तो दे दी गयी। तेरा दूसरा मनोरथ भी सफल होगा, परन्तु उसके लिये अभी कुछ समय लगेगा। कुछ दिनों बाद तुझे काशी जाना पड़ेगा; वहाँ छः महीने अनुष्ठान करनेपर श्रीव्यासजीके द्वारा गंगाजीमें तुझे मन्त्रकी प्राप्ति होगी, तब तेरी कामना पूर्ण होगी। मेरी बातपर दृढ़ विश्वास रखना और किसी समय कोई भी कार्य हो तो मुझे स्मरण करना, तुम्हारे स्मरण करते ही मैं दर्शन दूँगा। अब तुम अपने घर जाओ।'

विद्या प्राप्तकर ज्योतिपन्त घर आ गया। आज माता-पिताके आनन्दका पार नहीं है। ज्योतिपन्तने माता-पिताको सारा हाल सुनाया और उसकी विद्वत्ता देखकर उन्हें उसकी बातपर विश्वास भी हो गया। गाँवके लोगोंको जब ज्योतिपन्तके विद्या पढ़कर घर आनेका समाचार मालूम हुआ, तब लोगोंने उनके घर आ-आकर बधाइयाँ दीं। उन लड़कोंको बड़ा ही पश्चात्ताप हुआ जो ज्योतिपन्तकी बात न मानकर जंगलसे लौट आये थे।

(३)

ज्योतिपन्तके मामा महीपति पूनामें पेशवाके एक प्रधान कार्यकर्ता थे और सम्पत्तिवान् पुरुष थे। ज्योतिपन्तकी माताने लड़केको काम सीखनेके लिये उसके मामाके पास भेज दिया। बड़े आदमीके यहाँ अभिमान गरीब सम्बन्धीकी कद्र नहीं होने देता। इसीके अनुसार महीपतिने संकोचवश भांजे ज्योतिपन्तको

रख तो लिया, पर उसे नौकरी दी चार रुपये माहवारकी ही। उस जमानेमें चार रुपये कम भी नहीं थे, अतः ज्योतिपन्तका काम मजेमें चलने लगा।

दफ्तरमें हिसाब किताबका काम बहुत चढ़ गया था। पेशवाने तीन दिनके अंदर सारे बहीखाते ठीक कर देनेका कड़ा हुक्म दे दिया। काम इतना अधिक था कि दफ्तरके सारे कर्मचारी लगकर भी उसे एक महीनेसे कममें नहीं कर सकते थे। परन्तु पेशवाकी आज्ञापर कुछ बोलनेकी हिम्मत किसीकी नहीं थी। महीपतिकी चिन्ताका पार नहीं रहा। ज्योतिपन्तने मामाकी यह दशा देख उनसे कहा—'आप चिन्ता न करें, तीन रोजके अंदर सारे बहीखाते ठीक हो जायँगे। किसी एकान्त कमरेमें आप दावात, कलम, कागज, बहीखाते, बैठनेके लिये अच्छी गद्दी, तकिया, रोशनी, शुद्ध जल और फलाहारका सारा सामान रखवाकर कमरा बंद करवा दें, तीन रोजमें सारा हिसाब लिखा जानेपर मैं इशारा कर दूँगा, तब आप किवाड़ खुलवा दीजियेगा।' इस बातपर लोगोंने बड़ा मजाक उड़ाया; परन्तु चिन्तातुर महीपतिने भगवान्पर भरोसाकर भांजेके कथनानुसार एक अलग कमरेमें सब व्यवस्था कर दी और उसके कमरेमें चले जानेपर दरवाजा बंद कर दिया। ज्योतिपन्तने अंदर जाकर विधिपूर्वक भगवान् श्रीगणेशका पूजन करके उन्हें स्मरण किया। तत्काल गणेशजीने प्रकट होकर स्मरण करनेका कारण पूछा। ज्योतिपन्तने पूजन-प्रार्थना करनेके बाद सारे समाचार सुनाकर हिसाब लिख देनेकी प्रार्थना की। भक्तभयहारी भवानीनन्दन लिखनेको बैठ गये और उसके इच्छानुसार तीन दिनमें सारा हिसाब लिखकर तैयार कर दिया और अन्तर्धान हो गये।

इधर बाहर लोगोंने महीपतिको समझाकर कहा कि 'भला,

इतना बड़ा काम वह अनुभवशून्य बालक तीन दिनमें कैसे कर देगा? आपने बच्चेकी बातपर विश्वास कर बड़ी भूल की, कहीं बालक अंदर-ही-अंदर दम घुटकर मर जायगा तो व्यर्थकी ब्रह्महत्या लगेगी और आपकी बहिन सदाके लिये दुःखी होकर आपको शाप देगी। भलाई इसीमें है कि आप दरवाजा खोलकर उसे बाहर निकाल दीजिये और फिर हिसाब लिखनेका दूसरा प्रबन्ध सोचिये।'

तीन दिन हो चुके थे, ज्योतिपन्त दरवाजा खोलनेको कहना ही चाहता था, इतनेमें उसने उपर्युक्त बात भी सुन ली और पुकारकर तुरंत ही दरवाजा खुलवा लिया। सारे बहीखाते पूरे तैयार देखकर सब लोग दंग रह गये। अक्षर तो इतने सुन्दर और आकर्षक थे कि लोग एकटक लगाये उनकी ओर देखने लगे। महीपति बहियोंको देखकर हर्षोत्फुल्ल हृदयसे दरबारमें पहुँचे। पेशवाने आश्चर्यचकित हो महीपतिसे काम करनेवालेका नाम पूछा और उसे दरबारमें हाजिर करनेकी आज्ञा दी। महीपतिने घर आदमी भेजकर ज्योतिपन्तको राजकीय पोशाकमें आनेके लिये कहलवा दिया। ज्योतिपन्त दरबारी पोशाक न पहनकर अपने नित्यके मामूली वेशमें दरबारमें आया और पेशवाका यथायोग्य अभिनन्दन करके नम्रताके साथ एक ओर खड़ा हो गया। उसके निर्मल तेजस्वी चेहरेको देखकर सभी आश्चर्यमें डूब गये। पेशवाने बड़े प्रेमसे उसे पास बुलाकर परिचय पूछा। ज्योतिपन्तने विनम्र मधुर स्वरोंमें कहा—'राजन्! मैं श्रीमान् महीपतिजीकी बड़ी बहिनका लड़का हूँ। मेरा नाम ज्योतिपन्त है; माताकी आज्ञासे कुछ काम करने मामाजीके यहाँ आया हुआ हूँ और उनके आज्ञानुसार काम करता हूँ। वे कृपापूर्वक मुझे चार रुपये मासिक देते हैं, जिससे आनन्दसे मेरा काम चल जाता है।'

बालककी सच्ची, सरल वाणी सुनकर पेशवाने प्रसन्न होते हुए फिर पूछा—'ज्योतिपन्त! तीन ही दिनमें इतना बड़ा काम कैसे हो गया? इतने सुन्दर हस्ताक्षर कैसे बन गये हैं। हमने तो ऐसे अक्षर आजतक कभी नहीं देखे। सच बताओ इसमें क्या रहस्य है? ज्योतिपन्तने कहा—'महाराज! मेरी प्रार्थनापर भगवान् श्रीगणेशजीने सारा हिसाब ठीक करके लिख दिया और ये उन्हींके हस्ताक्षर हैं।' इसके बाद पेशवाके आग्रह करनेपर ज्योतिपन्तने श्रीगणेशजीकी कृपा प्राप्त करनेका सारा हाल उन्हें सुनाया, जिसे सुनकर पेशवाको बड़ा ही आनन्द हुआ। पेशवाने ज्योतिपन्तको सुयोग्य समझकर अपने हाथसे अधिकारकी पोशाक और राजकी मोहर देकर उसे पुरन्दर-किलेकी रक्षाका भार सौंप दिया। आज ज्योतिपन्तकी इज्जत महीपतिसे बढ़ गयी। अब महीपति भी भांजेके गौरवसे अपनेको गौरवान्वित समझने लगे। भोजनके समय मामाने उसे अपने पास बैठाकर स्वर्णके पात्रोंमें भोजन करवाया। भगवान्के प्रेमका पात्र सबके आदरका पात्र कैसे न हो।

(४)

ज्योतिपन्त अधिकार प्राप्तकर पुरन्दर-किलेपर पहुँचे और थोड़े ही दिनों बाद अपने माता-पिताको भी उन्होंने वहाँ बुलवा लिया और एक नम्र सेवककी भाँति भक्तिभावसे उनकी सेवा करने लगे। इसी प्रकार कुछ दिन बीत गये। उन दिनों उत्तरी भारतपर प्राय: पठानोंके हमले हुआ करते थे। पेशवाने भी उनका मुकाबला करनेके लिये तैयारी कर रखी थी। एक पेशवाकी फौजके साथ ज्योतिपन्तको भी लड़ाईमें जाना पड़ा। कुछ दिनों बाद एक रातको ज्योतिपन्तने स्वप्नमें यह आदेश सुना कि 'अब तुम्हें भगवान्की विशेष दया प्राप्त होगी, अतएव तुम यहाँ एक

क्षण भी न ठहरकर काशी चले जाओ।' दूसरे ही दिन ज्योतिपन्तने पेशवासे हमेशाके लिये नौकरीसे मुक्त होनेकी प्रार्थना की और उनसे आज्ञा पाकर अपनी सारी पूँजी गरीबोंको बाँटकर एक ब्राह्मणको साथ ले काशी चले गये। वहाँ उनका त्यागमय जीवन हो गया। वे प्रतिदिन प्रातःकालसे लेकर मध्याह्नके बारह बजेतक मणिकर्णिकामें कमरतक जलमें खड़े रहकर मन्त्र-जाप किया करते, तदुपरान्त मधुकरी माँग लाते और उसका भगवान्‌को भोग लगाकर प्रसाद ग्रहण करते। इस प्रकार छः महीने निर्विघ्न बीत गये। एक दिन नित्यक्रमानुसार ज्योतिपन्तजी श्रीगंगाजीमें खड़े जप कर रहे थे कि एक म्लेच्छने आकर उनके शरीरपर पानीके छींटे डाल दिये। वे पुनः स्नान करके जप करने लगे। उस पुरुषने फिर छींटे डाले, तब ज्योतिपन्तजी जरा आवेशके साथ उससे बोले कि 'देखो, इस तरह किसीके अनुष्ठानमें विघ्न डालना उचित नहीं है।' ज्योतिपन्तजीका यह सात्त्विक प्रकोप देखकर म्लेच्छ हँसने लगा और तत्काल ही भगवान् वेदव्यासके रूपमें बदल गया। ज्योतिपन्तने म्लेच्छरूपमें आये हुए भगवान् व्यासको पहचानकर उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। व्यासजीने आज्ञा दी कि 'वत्स! अब तुम्हारा अनुष्ठान पूर्ण हो गया, आज रातको व्यासमण्डपमें जाकर सो रहो, मैं तुम्हें वहाँ श्रीमद्भागवत लाकर दूँगा, जिसके पारायणसे तुम्हें यथार्थ तत्त्वज्ञान और प्रेमभक्तिकी प्राप्ति होगी। इतना कहकर और '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' इस द्वादशाक्षर-मन्त्रका उपदेश देकर भगवान् व्यास अन्तर्धान हो गये।

(५)

रातको ज्योतिपन्तजी व्यासमण्डपमें जाकर सो रहे, व्यासजीने बारहों स्कन्ध भागवत लाकर उनके सिरहाने रख दिया।

प्रात:काल उठते ही उन्होंने ग्रन्थके दर्शन कर साष्टांग दण्डवत् किया और मणिकर्णिकामें स्नान करनेके उपरान्त ज्ञानमण्डपमें बैठकर प्रात:कालसे लेकर सन्ध्यापर्यन्त श्रीमद्भागवतका पारायण आरम्भ कर दिया। श्रीमद्भागवतके नित्य पारायण और अध्ययनसे ज्योतिपन्तजीका तप और तेज अत्यन्त बढ़ गया। एक दिन भगवान् श्रीविश्वनाथ बूढ़े ब्राह्मणके रूपमें जाकर ज्योतिपन्तके सामने खड़े हो उनका भागवत-पारायण सुनने लगे। भगवान् शंकरके प्रभावसे ज्योतिपन्तजीकी जिह्वा लड़खड़ा गयी और उनसे अस्पष्ट उच्चारण होने लगा। भगवान् भोलेनाथने विनोदपूर्वक कहा 'पण्डितजी महाराज! क्या रोज इसी तरह पारायण करते हो?' उनका यह प्रश्न सुनते ही ज्योतिपन्तजीने बूढ़े बाबाको पहचान लिया और उठकर बड़े ही सम्मान और भक्तिके साथ अश्रुपूर्णनेत्र हो वे भगवान्के चरणोंपर गिर पड़े। श्रीशिवजीने प्रसन्न होकर आज्ञा दी कि 'अब तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो गया, तुम्हें यथार्थ तत्त्वज्ञान और प्रेमाभक्तिकी प्राप्ति हो गयी, अब तुम्हें किसी साधनकी आवश्यकता नहीं है। तुम मेरी आज्ञासे समस्त पुरुषार्थोंके मूल कारण भगवान्के भजन-मार्गमें लोगोंको लगाओ और उनका कल्याण करो।' इतना कहकर बाबा विश्वनाथ अन्तर्हित हो गये।

ज्योतिपन्तजीकी इस स्थितिकी बात काशीमें फैल गयी और वहाँके विद्वानोंने भगवान् व्यासप्रदत्त श्रीमद्भागवत ग्रन्थको सिंहासनपर विराजित कर उसकी सवारी निकाली और ज्योतिपन्तको 'महाभागवत' की उपाधि प्रदान की। इसके बाद ज्योतिपन्तजी महाराष्ट्र लौट आये। वहाँ उन्होंने जीवनभर जगह-जगह घूम-घूमकर भगवान्की भक्तिका प्रचार किया, अनेक मन्दिर बनवाये और लोगोंको भक्तिमार्गमें लगाया।

अन्तमें विक्रम-संवत् १८४५ कीलक नामक संवत्सरकी मार्गशीर्ष कृष्णा त्रयोदशीको इस नश्वर संसारको छोड़कर ज्योतिपन्तजी परमधामको पधार गये।

मराठीमें ज्योतिपन्तजीकी भक्ति, ज्ञान और वैराग्यपरक बहुत रचनाएँ मिलती हैं। श्रीमद्भागवतके बारहों स्कन्धोंपर आपने ओबी छन्दोंमें टीका लिखी थी, पर इस समय वह पूरा ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। कहा जाता है कि भगवान् व्यासदेवजीके द्वारा दिया हुआ श्रीमद्भागवत ग्रन्थ 'चिंचरेण' ग्राममें अब भी ज्योतिपन्तजीके वंशजोंके पास है।

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय!

भक्तवर विट्ठलदासजी

दक्षिणके एक श्रेष्ठ ब्राह्मणकुलमें दो सगे भाई राजपुरोहित थे। घरमें धन-सम्पत्तिकी कमी नहीं थी। ब्राह्मणकुलमें होनेसे विद्या भी यथेष्ट थी, परंतु संसारमें धनसे जितनी बुराई होती है उतनी शायद दूसरी किसी भी वस्तुसे नहीं होती। विद्वान् होनेपर भी धनके कारण दोनों भाइयोंमें परस्पर मनमुटाव रहने लगा। फलस्वरूप दोनोंने सम्पत्तिका बँटवारा कर अलग-अलग रहनेका विचार किया। लोभवश दोनों ही एक-दूसरेसे कुछ-न-कुछ अधिक हड़पनेकी इच्छासे लड़ने लगे। यहाँतक नौबत आ गयी कि दोनों परस्पर सर्वस्व नाश करनेको तैयार हो गये। बन्धु-बान्धवोंने समझा-बुझाकर झगड़ा मिटाना चाहा, परन्तु दैववश दोनोंकी बुद्धिने किसीकी बातपर ध्यान नहीं दिया। परिणाम यह हुआ कि दोनों ही एक-दूसरेके प्राणघातक बन इस लोकसे बिदा हो गये। इस दुर्घटनाको सुनकर राजाको भी बड़ा दुःख हुआ। पर कोई उपाय न देख ब्राह्मणके घरवालोंको समझा-बुझाकर अन्तमें राजाको भी चुप बैठना पड़ा। अब इस ब्राह्मणपरिवारमें दो विधवा स्त्रियों और छोटे भाईके एक बच्चे विट्ठलदासको छोड़कर और कोई नहीं रह गया।

बालक विट्ठलदास आदर्श सद्‌गुणी और होनहार लड़का था। वह जब कुछ समझने लगा, तब एक दिन उसने अपनी मातासे पिताका हाल पूछा। इसपर उसकी माताने उसके पिता और ताऊके कलह और परस्पर लड़ मरनेका सारा वृत्तान्त उसे सुना दिया। बालकके मनपर धनके कारण होनेवाली इस दुर्घटनाका विलक्षण प्रभाव पड़ा और वह चिन्तामग्न हो गया। धनको सारे अनर्थोंकी जड़ जानकर उसने मन-ही-मन धनके त्यागका

संकल्प किया और दृढ़ताके साथ प्रपंचकी आशा छोड़कर पुरोहित-वृत्तिका त्याग कर दिया। उसी समयसे विट्ठलदासका मन सांसारिक बातोंसे विरक्त रहने लगा और उसका अधिकांश समय भजन, ध्यान और भगवन्नामकीर्तनमें बीतने लगा। उसी दिनसे उसने अपने-आपको सर्वतोभावेन भगवच्चरणोंमें अर्पण कर दिया। अपने इकलौते पुत्रकी यह स्थिति देख माताको यह चिन्ता होने लगी कि कहीं यह घर छोड़कर चला न जाय और इसी आशंकासे उसने उसका विवाह कर दिया। और यों उसे सांसारिक बन्धनमें बाँधकर गृहस्थमें जकड़ रखना चाहा। परंतु जिसने एक बार उस अमियरसका पान कर लिया उसको अपने लक्ष्यसे कौन डिगा सकता है? दिनोदिन उसका ईश्वर-प्रेम बढ़ने लगा और अब तो उसका एक क्षण भी बिना भगवत्-स्मरणके नहीं बीतता है। साधु-संतोंकी सेवा करना, ब्राह्मणों और भूखोंको भोजन-अन्न देना आदि उनके नित्य कर्म थे। भगवान्‌की पूजा करनेके अनन्तर हाथोंमें करताल और वीणा लेकर 'गोविन्द गोपाल श्रीपति! अच्युतानन्द वामनमूर्ति! भक्तवत्सल विश्वपति! राधा-मन-मानसरंजन! गोकुलनिवासी जनार्दन! गोपवेश-गोवर्धनधारण! नन्दनन्दन! श्रीहरि!' आदि नामोंका प्रेमपूर्वक उच्च स्वरसे कीर्तन करते-करते विट्ठलदास प्रेमविह्वलताके कारण बेसुध हो जाते और लगातार तीन-तीन घंटोंतक वैसे ही खड़े रहते। उनकी इस प्रेम-भक्तिकी विलक्षण दशा देखकर संत और भक्तजनोंको तो बड़ा आनन्द होता है। अवश्य ही इस रहस्यको न जाननेवाले दुष्ट प्रकृतिके कुछ संसारी मनुष्य उनकी स्थिति देखकर उनपर सन्देह करते और उन्हें दाम्भिक बतलाया करते।

एक दिन राजाको अपने पुरोहित-पुत्र विट्ठलदासका स्मरण हुआ। उसने मन्त्रीसे उसका वृत्तान्त पूछा। मन्त्रीने विट्ठलदासके

पिताकी मृत्युघटनाके प्रभावसे उसकी बदली हुई स्थिति और भगवत्-निष्ठाका सारा हाल कह सुनाया। इसे सुनकर राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने अपनी कुछ सम्पत्तिको पवित्र करनेकी इच्छासे विट्ठलदासको धन-धान्य देनेका विचार कर उन्हें बुलानेके लिये कुछ कर्मचारियोंको भेजा। उन्होंने भक्तवर विट्ठलदासजीके समीप जाकर उन्हें राजाकी प्रार्थना सुनायी और बड़े सम्मानपूर्वक उन्हें साथ चलनेके लिये कहा। परंतु प्रतिष्ठाको 'शूकरीविष्टासदृश' और रमाविलासको 'वमनसदृश' समझनेवाले भक्तने राजकर्मचारियोंको नम्रतापूर्वक समझा-बुझाकर लौटा दिया। विट्ठलदासकी इस निःस्पृहता और विरतिको देखकर उनपर राजाकी श्रद्धा और भी बढ़ गयी और उसने किसी प्रकार भी उन्हें अपने घरमें बुलाकर उनकी पवित्र पदरज और दर्शनसे अपने घर और कुटुम्बको पवित्र करना चाहा। इसलिये अबकी बार उसने कुछ खास-खास लोगोंको किसी प्रकार विनती कर उन्हें लिवा लानेके लिये फिर उनके पास भेजा। अबकी विट्ठलदासजी अस्वीकार नहीं कर सके और ईश्वर-प्रेरणा समझकर उन शिष्ट पुरुषोंके साथ श्रीभगवन्नाम-कीर्तन करते हुए राजासे मिलनेके लिये दरबारमें गये। भक्तवर विट्ठलदासजीको आया देखकर राजाको बड़ा ही आनन्द हुआ और उसने सिंहासनसे उठकर अत्यन्त भक्ति और सम्मानपूर्वक उनका अभिवादन कर बैठनेके लिये आसन दिया। विट्ठलदासजीके शान्त, सौम्य, तेजपूर्ण मुखमण्डलको देखकर राजा मन्त्रमुग्ध-सा हो गया और अपनेको धन्य मानने लगा। उसने उनसे भगवत्-गुणानुवाद और भजन सुनानेकी प्रार्थना की। भक्तोंको अपने भगवान्‌की गुण-चर्चामें जितना अधिक आनन्द होता है उतना और किसी बातमें नहीं होता। राजाकी बात सुनकर विट्ठलदासजीको

बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने आनन्दपुलकित हो इसे स्वीकार कर लिया। हरिकीर्तनकी तैयारी होने लगी। वीणा, करताल, मृदंग आदि कीर्तनका सामान मँगवाया गया। देखते-ही-देखते सारी तैयारियाँ हो गयीं। समाजमें अच्छे-बुरे सभी प्रकारके मनुष्य थे। उनमेंसे कितने ही भक्त और संतोंके अकारण द्रोही भी थे। उन्हें भगवन्नाम आदिमें श्रद्धा नहीं थी और वे भ्रमवश विट्ठलदासजीसे भी द्वेष रखा करते थे। उनकी तन्मयताकी परीक्षा करनेके लिये मन्दबुद्धि, कलुषितहृदय दुष्टोंने आजके दिनको अच्छा मौका समझकर राजासे कहा कि आजका कीर्तन खुली छतपर होनेसे बड़ा आनन्द आवेगा। सरल प्रकृति राजाने दुष्टोंके कुभावको न समझकर वैसा करनेकी अनुमति दे दी। दुष्टोंने षड्यन्त्र रचकर भक्तवर विट्ठलदासजीका आसन ऐसी जगह लगाया कि जहाँसे कीर्तन करते हुए विट्ठलदास यदि तन्मयताके कारण मूर्च्छित होकर गिरें तो सीधे छतके नीचे ही आकर ठहरें।

विट्ठलदासजी आसनपर आ विराजे। सारा समाज यथायोग्य स्थानपर बैठ गया। कीर्तन आरम्भ हुआ। सबने बड़े प्रेमसे योग दिया। प्रेमरसमें निमग्न हो सभी प्रेमी श्रोतागण कीर्तनमें अपूर्व आनन्दका अनुभव करने लगे। प्रेमियोंके मुखकी हरिध्वनि और करताल, वीणा, मृदंगादिकी तालबद्ध मधुर ध्वनिसे दसों दिशाएँ गूँज उठीं। बीच-बीचमें हरि-गुणगान भी होता था। विट्ठलदासजी प्रेममदमें छक गये और मतवाले होकर नाचने लगे। हृदयके प्रेम और उत्साह तथा पैरोंमें बँधे हुए घुँघुरुओंने तल्लीनता बढ़ानेमें और भी सहायता की। 'पतितपावन जगदोद्धारा। आदि सर्वेशा वैकुण्ठविहारा। भक्तवत्सल इन्दिरावरा' आदि नामरत्नोंकी माला गूँथते हुए वे मुक्तकण्ठसे कीर्तन करने लगे और अन्तमें प्रेमावेशमें पागल हो मूर्च्छित होकर गिरे तो एकदम छतसे नीचे आ ठहरे।

कुछ दुष्ट प्रकृतिके लोगोंके सिवा सभी श्रोतागण कीर्तन-रसके पानसे मुग्ध हो रहे थे। भक्तवर विट्ठलदासजीके मूर्च्छित होकर नीचे गिरनेकी सम्भावना किसीके भी खयालमें पहले न आयी थी, परंतु अब उन्हें नीचे गिरते देख सब घबड़ा गये और इस घटनासे सभीके हृदयमें बड़ी भारी चोट पहुँची। दुष्टोंकी मनचाही हो गयी। अब तो वे अपनी सफलताके आनन्द और अभिमानमें फूले नहीं समाये। राजाने नीचे आकर देखा, भक्तके हृदयकी धड़कन और श्वासकी गति बंद हो गयी है। राजा यह दशा देखकर एकदम व्याकुल हो गये। उनके दुःखका पार नहीं रहा। किसी तरह धीरज धरकर राजाने उस मृत शरीरको उठवाया और उनकी माताके पास उनके घर ले गये। अपने जीवनाधार एकमात्र पुत्रकी यह स्थिति देखकर माताके दुःखका पार नहीं रहा। राजाने अनेक प्रकारसे उन्हें धीरज दिया और बहुत-सा धन देकर किसी प्रकार यत्किंचित् संतोष करा अपने घर लौट आये।

यद्यपि माताको इस जीवनमें अपने पुत्रसे मिलनेकी अब कोई भी आशा नहीं रही थी, तथापि घोर निराशामें तनिक-सी भी आशा मनुष्यके हृदयमें अकथनीय उत्साह और जीवन देनेवाली होती है। अतएव उसको भी यह बात याद आयी कि विट्ठलदास कीर्तनके समय सदा ही मूर्च्छित हुआ करता है; आजकी मूर्च्छा शायद विशेष गहरी हो और उसके प्राण न निकले हों। इसलिये उसने शवका दाह-कर्म न करवा उसे एक चद्दरसे ढाँककर सुरक्षित रख दिया और उनके निस्तेज मुखको बारंबार देखकर प्राण-संचारकी प्रतीक्षा करने लगी। इसी तरह तीन दिन बीत गये। शवमें किसी प्रकारकी चेतनता नहीं आयी। भगवान्‌की अपार महिमा है, उनकी कृपासे सभी कुछ सम्भव है। चौथे दिन

विट्ठलदासजी अपनी उस प्रेम-मूर्च्छा या कालमूर्च्छासे सबको आनन्दित करते हुए जाग उठे और अपनेको राजमहलके बदले अपने घरमें देखकर बड़े आश्चर्यान्वित हुए तथा मातासे इसका कारण पूछने लगे। माताने छतसे गिरनेकी घटनासे लेकर राजाके द्रव्यदानतककी सारी रामकहानी संक्षेपमें कह सुनायी। छतसे गिरनेपर भी शरीर-रक्षा हुई जानकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और भगवत्कृपाका बारंबार स्मरण कर वे आनन्दसे गद्‌गद हो गये। परंतु माताका लोभवश राज्यद्रव्य स्वीकार करना उन्हें बहुत ही बुरा लगा; और भविष्यमें इससे एवं ऐसी आश्चर्यजनक घटनासे प्रसिद्धि फैलनेके कारण बड़ी भारी हानि होनेकी आशंकासे उन्होंने मन-ही-मन रात्रिमें चुपचाप घर छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जानेका निश्चय कर लिया।

आधी रातका समय है। चारों तरफ निस्तब्धता छायी है। दिनभरके परिश्रममें थके-हारे संसारी लोग प्रकृतिकी आनन्दमयी गोदमें विश्राम पाकर जीवन-शक्ति प्राप्त कर रहे हैं। ऐसे समय विट्ठलदासजी चुपचाप उठे और घरका द्वार खोल निर्भयताके साथ तेज चालसे मथुराकी ओर चल पड़े। उनके जानेका हाल किसीको मालूम नहीं हुआ। सबेरे माता और पत्नीने पुत्र और स्वामीको घरमें न पाकर विलाप करना शुरू कर दिया। राजाके पास शीघ्र ही इसकी खबर पहुँची। समाचार पाते ही उन्हें खोजनेके लिये राजाने इधर-उधर दूत दौड़ाये, परंतु सब व्यर्थ हुआ। माता अपने प्यारे पुत्रको फिर खो बैठनेके दुःख में प्राण त्यागनेकी प्रतिज्ञा कर अनशन-व्रत करने लगी। दयामय भगवान्‌से अपने भक्तकी माताका पुत्र-वियोगजनित दुःख न देखा गया। विट्ठलदासकी माताको स्वप्नमें यह ज्ञात हो गया कि विट्ठलदास मथुरामें हैं। सबेरा होते ही माता भी पुत्रवधूको साथ ले मथुराकी

ओर चल दी और वहाँ अपने नयनोंके तारे प्यारे पुत्रको देख प्रसन्नताके मारे फूली न समायी। माताके आग्रहसे विट्ठलदासजीने उनको अपने पास रख लिया और सकुटुम्ब अपना सारा समय भगवद्भजनमें बिताते हुए व्रजभूमिका आनन्द लूटने लगे।

विट्ठलदासकी पत्नी भी परमभावुका और पतिव्रता थी। वह प्रत्येक काम पतिके इच्छानुसार किया करती एवं अपना सारा समय सत्संग, भजन, कीर्तन, भगवद्दर्शन एवं सास और पतिकी सेवामें बिताया करती। एक दिन चूल्हा पोतनेके लिये वह मिट्टी लाने लगी, तो मिट्टी खोदते समय उसे भूमिमें शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज भगवान्‌की मूर्ति मिली और इस मूर्तिके पास ही बहुत-सा धन देखा। धनको सब अनर्थोंकी जड़ समझनेवाले भक्तकी पतिव्रता स्त्रीके मनमें उस धनका जरा-सा भी लोभ नहीं आया और उसे देखते ही वह पतिके पास दौड़ी आयी और सारा वृत्तान्त कह सुनाया। हाल सुनकर विट्ठलदासजीने कहा कि 'इस स्थानके स्वामीको इसकी सूचना दे दो, जिससे वह अपना धन ले जाय।' आज्ञानुसार मालिकके पास खबर भेजी गयी, वह आया और धन देखकर उसने हाथ जोड़कर कहा कि 'महाराज! यह धन तो आपका ही है, आप इसे ग्रहण कीजिये। मेरा होता तो पहले मुझे मिलता; पर जब यह आपको मिला है तो आप ही इसके मालिक हैं।' इसपर विट्ठलदासजी बोले कि 'भाई! जिसकी जमीनमें जो चीज मिलती है, उसपर उस जमीनके मालिकका ही हक होता है। हमारा तो इस स्थानमें रहनेभरका अधिकार है, बाकी इसके और इसके अंदरसे मिलनेवाली वस्तुके मालिक तुम्हीं हो।' उसने इसे स्वीकार नहीं किया और इसी तरह बात बढ़ते-बढ़ते यहाँतक बढ़ गयी कि आखिर यह मामला ग्रामके पंचोंके सामने गया। उन दिनों न तो आजकलकी तरह मुकद्दमेबाजीका ही युग था, न आपसमें मुकद्दमा

लड़ानेका पेशा करनेवाले वकील-मुख्तार ही थे, न बालकी खालको खींचकर कानूनका अर्थ करनेवाले जज, मजिस्ट्रेट थे और न गवाहोंको डरा-धमकाकर या वाग्जालमें फँसाकर उनसे उलटी-सीधी कहलानेवाले पब्लिकप्रासिक्यूटर या वकील-बैरिस्टर थे। जो कुछ भी आपसका मतभेद होता, उसका निपटारा करानेके लिये केवल मतभेदवाले व्यक्ति ग्रामके पंचोंके सामने जाकर सच्चा-सच्चा हाल बयान कर दिया करते और दोनोंकी सुनकर पंच जो कुछ फैसला कर देते वही दोनोंको शिरोधार्य होता। पाठकगण! क्या आपलोगोंने आजकलकी अदालतोंमें भी कहीं ऐसा दिलचस्प मुकद्दमा देखा-सुना है। सुनते भी कहाँसे? अब न तो वैसी ईमानदार प्रजा है और न वैसे धर्मनिष्ठ एवं न्यायशील राजा हैं। अब तो हमलोगोंकी संस्कृतिमें ही कुछ ऐसा परिवर्तन हो गया है कि हम बिना ही कारण लोभवश एक-दूसरेके स्वत्वपर अपना हक जमाना चाहते हैं और इसीलिये उपर्युक्त घटनाको प्राय: कल्पनामात्र समझ लेते हैं। अस्तु! मामलेको सुनकर पंचोंने फैसला कर दिया कि यह धन भगवान्‌की मूर्तिके साथ मिला है, इसलिये इस धनसे इसी स्थानपर एक भगवत्-उपासनाके लिये मन्दिर बनवाकर उसमें वही मूर्ति स्थापित की जाय। इस निर्णयको दोनोंने बड़ी प्रसन्नतासे मान लिया और उसी स्थानपर उस धनसे एक बड़ा सुन्दर मन्दिर निर्माण करवाकर उसमें उसी मूर्तिकी स्थापना करवा दी गयी और भगवदुपासकोंके लिये—वहाँ रहकर उपासना करनेवालोंके लिये यथोचित प्रबन्ध कर दिया गया। भक्त विट्ठलदास सपरिवार भगवान्‌का भजन-स्मरण करते हुए अन्तमें उन्हें प्राप्त कर सदाके लिये परम सुखी हो गये।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

भक्त श्रीदीनबन्धुदास और उनका कुटुम्ब

प्रसिद्ध अवन्तिकापुरीमें भक्तवर दीनबन्धुदासका जन्म उत्तम ब्राह्मण-कुलमें हुआ था। उनके कुटुम्बमें पतिव्रता ब्राह्मणी मालती, दो पुत्र, एक पुत्रवधू—ये चार व्यक्ति और थे। पाँचों ही मानो पूर्वजन्मके कोई योगभ्रष्ट, भगवद्भक्त, वैराग्यवान्, तपस्वी जीव थे। इनमें परस्पर बड़ा भारी प्रेम था। एक-दूसरेकी सेवा करने और परस्पर सुख पहुँचानेके लिये सब-के-सब सदा तैयार रहते थे। लोगोंके देखनेमें इनमें परस्पर बड़ा मोह प्रतीत होता था। परंतु वास्तवमें ये सब वैराग्यकी मूर्ति थे। श्रीहरिके चरणकमलोंमें सर्वस्व समर्पण करके निरन्तर प्रेमपूर्वक भगवान्‌का भजन करना इनके जीवनका व्रत था। श्रीहरिकी कथापर इनकी बड़ी प्रीति थी। ये अपना अधिक समय संत-समागम और संत-सेवामें ही बिताते थे। दूसरोंका भला करना, प्रत्येक जीवको सुख पहुँचाना—इनका नित्यका कार्य था। इनके हाथ संतोंकी चरण-सेवा और दुःखी-दरिद्र नर-नारियोंको अन्न-वस्त्र देने और उनकी शुश्रूषा करनेमें सदा लगे रहते थे। अतिथि-सेवाको तो ये अपना प्रधान धर्म मानते थे। इनके घरसे कभी कोई अतिथि निराश नहीं लौटा। 'अतिथि-सेवा गृहस्थका परम धर्म है और अतिथि यदि निराश लौट जाता है तो वह अपने सारे पाप गृहस्थके घर छोड़ जाता है'—शास्त्रके इस वचनपर इनकी दृढ़ श्रद्धा थी। अतएव इनके घर अतिथिका भलीभाँति आदर-सत्कार होता था। यदि किसी अतिथिकी मनोकामना पूर्ण करनेमें ये नितान्त ही असमर्थ होते तो मधुर वचनोंसे उसे संतोष करवाके लौट आते थे। तिरस्कार करके या साफ इन्कार करके कभी किसी अतिथिका मन नहीं दुखाते थे।

भक्त दीनबन्धुदासके इस धार्मिक जीवनकी ख्याति देशभरमें फैल गयी। प्रकृतिकी सीमाको लाँघकर भगवान्‌के अप्राकृत राज्यमें तो यह समाचार कभीका पहुँच चुका था। बात भी ठीक है। मनुष्यके हृदयकी ऐसी कौन-सी छिपी हुई स्थिति है जिसको अन्तर्यामी प्रभु न जानते हों! इसके अतिरिक्त अतिथियोंमें भी न मालूम कब, कौन, किस देशके महापुरुष, किस वेषमें आ जाते हैं, जो हमारे गुण-दोषोंकी परीक्षा कर उनका समाचार प्रभुतक पहुँचाते रहते हैं। पता नहीं, कब अप्राकृत राज्यका कोई अतिथि हमारे द्वारपर आ जाय, अतएव गृहस्थको अतिथि-सेवाके लिये सर्वदा और सर्वथा तैयार रहना चाहिये और इसमें अपना सौभाग्य मानना चाहिये।

संसारमें जैसे विषयी मनुष्य धन, पुत्र और मानादि पानेके लिये व्याकुल रहता है, उसी प्रकार दिव्यधाममें भगवान् भी एक बातके लिये बड़े व्याकुल हो जाया करते हैं और उस व्याकुलताके सामने विषयी मनुष्योंकी व्याकुलता समुद्रके सामने एक परमाणुके समान भी नहीं होती। भगवान् जब यह जान पाते हैं कि अमुक जीव मुझसे मिलनेके लिये व्याकुल है तो वे इतने व्याकुल हो जाते हैं कि फिर इन्हें अति शीघ्र उस भक्तको दर्शन देनेके अतिरिक्त और कोई बात याद नहीं रहती। वे किसी चीजकी बाट न देखकर तुरंत उसे कृतार्थ करनेके लिये वहाँ जा पहुँचते हैं। गजराजको बचानेके लिए इसी व्याकुलताके कारण भगवान् गरुड़ छोड़कर हठात् वहाँ प्रकट हो गये थे। आज वही अखिल विश्वके स्वामी, दीनबन्धु प्रभु अपने सेवक दीनबन्धुदासको कृतार्थ करनेके लिये अवन्तिका नगरीमें आ पहुँचे और भक्तिकी महिमा बढ़ानेके लिये उसकी अतिथिपरायणताकी परीक्षाके बहाने उन्होंने एक नयी लीला रच डाली। भगवान्‌की प्रेरणासे

एक तीव्र विषधर सर्पने दीनबन्धुदासके घर पहुँचकर उनके बड़े बेटेको डँस लिया। देखते-ही-देखते उसके सारे शरीरमें जहर फैल गया और कुछ देरतक छटपटानेके बाद वह भगवान्‌के धाममें जा पहुँचा। पुत्रकी अकाल-मृत्युसे दीनबन्धु और उनकी पत्नीको बड़ा दुःख हुआ। पतिव्रता पुत्रवधूके दुःखका तो कहना ही क्या था! बड़े भाईकी मृत्युसे छोटे भाईको भी दुःख था, परंतु इनका यह दुःख वास्तविक था या जगन्नाटकका अभिनय—इसका पता पाठकोंको आगे चलकर लगेगा।

इसी समय अवन्तिका नगरीके राजमार्गपर एक तेजःपुंज संन्यासी लोगोंको दिखायी दिये। उनके एक हाथमें दण्ड और दूसरेमें कमण्डलु था। बदनपर सुन्दर गेरुआ वस्त्र था। चेहरा अत्यन्त शान्त, गम्भीर और तेजस्वी था। देखते ही भक्तिभावसे लोगोंके मस्तक झुक जाते थे। संन्यासीजी शहरके लोगोंसे पूछते-पूछते दीनबन्धुदासके द्वारपर आकर उन्हें पुकारने लगे। घरमें उस समय कोलाहल मचा हुआ था। परंतु संन्यासीकी पुकार सुनते ही सब चुप हो गये। दीनबन्धु अपना मुँह धो-पोंछकर बाहर आये और संन्यासीकी तेजःपुंज मूर्ति देखते ही आनन्दविह्वल हो गये। तदनन्तर दोनों हाथ जोड़कर नम्रतासे बोले—'देव! पधारिये, इस अधमके योग्य जो आज्ञा हो निःसंकोच कहिये।'

संन्यासीने गम्भीर स्वरमें कहा—'भाई दीनबन्धु! मैंने सुना है कि तुम अतिथियोंका बड़ा ही आदर-सत्कार करते हो और दीन-हीन दुःखी नर-नारियोंको यथायोग्य अन्न-वस्त्र, आश्रय और आश्वासन देकर सुखी करते हो। मैं बहुत भूखा हूँ। मुझे अभी इसी क्षण भिक्षा देकर सुखी करो।'

संन्यासीकी बात सुनकर दीनबन्धुदासने भक्तिभरे हृदयसे

प्रणाम करके कहा—'महाराज! आप इस आसनपर विराजिये मैं अभी आता हूँ।'

इतना कहकर संन्यासीको आसनपर बैठाकर दीनबन्धु घरके भीतर गये और स्त्री-पुत्रादिसे बोले—'देखो, बाहर एक क्षुधातुर संन्यासी खड़े हैं और वे अभी भिक्षा चाहते हैं। इधर पुत्रका मृत देह घरमें पड़ा है, अब क्या करना चाहिये? ऐसे विकट समयमें हमलोग किस प्रकार अतिथि-सेवा कर सकेंगे। तुमलोगोंकी क्या सम्मति है?'

दीनबन्धुदासकी बात सुनकर पत्नी मालती, पुत्रवधू और छोटे पुत्र तीनोंने एक ही स्वरसे कहा—'मरा हुआ प्राणी तो वापस लौट नहीं सकता। अतिथि घरसे विमुख लौट जायगा तो बड़ा अधर्म होगा। न मालूम अतिथिके रूपमें कौन आये हैं। अतएव पहले जैसे भी हो, अतिथि-सत्कार करना चाहिये, इसके बाद मृतदेहका संस्कार किया जायगा।'

घरके सब लोगोंका मत अपने अनुकूल पाकर दीनबन्धुदास बहुत ही प्रसन्न हुए और ऐसे प्रभुभक्त धर्मनिष्ठ कुटुम्बीजनोंकी प्राप्तिमें अपना सौभाग्य समझकर भगवान्‌को धन्यवाद देने लगे। तदनन्तर सर्वसम्मतिसे पुत्रका मृतदेह एक मजबूत कपड़ेमें बाँधकर उन्होंने एक कोठरीमें रख दिया और सब लोगोंने स्नानादि करके अतिथि-सत्कारकी तैयारी की। सास-बहूने मिलकर बड़े प्रेमसे रसोई बनायी। दीनबन्धुदास रसोई तैयार होते ही आसन बिछाकर संन्यासीको अंदर बुला लाये और हाथ धुलाकर भोजन परोसने लगे।

थाल परोसनेके बाद दीनबन्धुदासने संन्यासी महाराजसे विनयपूर्वक भोजन करनेके लिये प्रार्थना की। उत्तरमें संन्यासीजी बोले—'भाई दीनबन्धु! तुमने तो सिर्फ मेरे ही लिये भोजन

परोसा है। मैं किसी भी गृहस्थके घर कभी अकेला भोजन नहीं किया करता। घरमें जितने मनुष्य होते हैं, सबको साथ बैठाकर भोजन किया करता हूँ। इसलिये तुमलोग सब मेरे साथ भोजन करो, यदि ऐसा नहीं कर सकते तो मैं भोजन नहीं करूँगा।'

संन्यासीकी बात सुनकर सभी विचारमें पड़ गये और एक-दूसरेकी ओर ताकने लगे। सबने अपने-अपने मनमें विचार किया—'यदि हम भोजन करने नहीं बैठेंगे तो संन्यासी बिना कुछ खाये चले जायँगे, यह हमारे लिये बड़े ही अधर्मकी बात होगी, अतएव चुपचाप इनके साथ बैठकर दो-चार कौर खा लेना ही उचित है।'

सबकी एक सम्मति जानकर चार थालियाँ और परोस दी गयीं और चारों ही जने भोजन करने बैठ गये; परंतु संन्यासीजीने फिर भी कौर नहीं उठाया। कुछ देर बाद मौन भंग करके संन्यासीने कहा—'भाई दीनबन्धु! मैंने लोगोंसे सुना था कि तुम्हारे घरमें तुम्हारी पत्नी, दो पुत्र और एक पुत्रवधूसमेत तुम सब पाँच आदमी हो; परंतु मेरे साथ तो तुम चार ही बैठे हो। तुम्हारा एक पुत्र कहाँ गया? मैं अपने नियमके अनुसार उसके आये बिना भोजन नहीं कर सकता।'

संन्यासीकी इस बातको सुनते ही सबके होश उड़ गये। बोलनेकी शक्ति नहीं रही। अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे सब संन्यासीकी ओर ऐसे देखने लगे, मानो उन्होंने संन्यासीका कोई भारी अपराध किया हो। दीनबन्धुदासके सारे कुटुम्बकी ऐसी दशा देखकर संन्यासीजीने गम्भीरतासे कहा—'अरे भाई! इतना डर किस बातका है? तुमलोग ऐसे दुःखी क्यों हो गये? साहस करो और जो बात हो सच-सच कह दो। बताओ, तुम्हारा पुत्र कहाँ है?'

संन्यासीकी बात सुनकर चारों ही उनके चरणोंमें लोट पड़े। तदनन्तर दीनबन्धुदासने धीरेसे कहा—'महाराज! मैं सच्ची बात आपके सामने कहता हूँ, आप हम अधमोंपर क्रोध न करें। जिस समय आप यहाँ पधारे उसके कुछ ही मिनट पूर्व साँपके काटनेसे मेरे पुत्रकी मृत्यु हो गयी थी। हमलोग उसके दाह-संस्कारकी तैयारी करनेको थे, इतनेमें ही आप पधार गये। आप अत्यन्त भूखे हैं, यह जानकर हमलोगोंने पहले आपको भिक्षा करवाना ही निश्चय किया। तदनुसार पुत्रकी लाश अलग रख दी गयी और स्नान करके रसोई बनायी गयी। अब आपकी जैसी आज्ञा हो।'

संन्यासीने आश्चर्यचकित-से होकर कहा—'अरे, तुम क्या सच कहते हो? मुझे तो इस बातपर विश्वास नहीं होता। पुत्र और पतिके मृतदेहको छोड़कर कौन पिता-माता और स्त्री अतिथि-सत्कारके लिये तैयार हो सकते हैं? मुझे दिखलाओ; तुम्हारे पुत्रका मृतदेह कहाँ है?'

अब दीनबन्धु क्या करता! पुत्रके मृतदेहकी गँठरी वहाँ उठा लाया और चादर खोलकर वहीं शोकाकुल हो खड़ा रह गया। संन्यासी तो लाशको देखते ही उठकर खड़े हो गये और क्रोधमें भरकर लाल-लाल आँखें निकालते हुए बोले—'अरे दीनबन्धु! तू कैसा नृशंस है? तुझे कौन ज्ञानी कहता है? मैं तो समझता हूँ, तू अत्यन्त ही दुष्टप्रकृतिका निर्दय मनुष्य है। पुत्रकी लाश घरमें पड़ी रहे और पिता आनन्दपूर्वक किसीके साथ भोजन करने बैठ जाय! ऐसे निर्दय, कठिनहृदय और पापी पिताको क्या कहा जाय?'

संन्यासीके वचन सुनकर दीनबन्धुदासने कहा—'महाराज आपका कथन सत्य हो सकता है; परंतु आप ही बतलाइये

संसारमें कौन किसका पिता है और कौन किसका पुत्र है? यह तो राहकी धर्मशाला है, जगह-जगहके यात्री आकर ठहरते हैं और अपना-अपना समय पूरा होते ही आगेकी यात्राके लिये चल देते हैं। कोई पहले जाता है, कोई पीछे। अथवा यों समझिये कि यह संसार एक आमके पेड़के समान है। यथासमय इसमें बौर लगते हैं, फिर सूखकर गिर जाते हैं। उनमेंसे कुछमें नन्हें-नन्हें-से फल लगते हैं, उन फलोंमें कुछ तो बड़े होते हैं और कुछ थोड़े ही दिनोंमें नष्ट हो जाते हैं। जो आम बड़े होते हैं और पकते हैं, वे भी काल पाकर गिर पड़ते हैं या मनुष्योंके उपभोगमें आनेके लिये तोड़ लिये जाते हैं। इस प्रकार छोटे-बड़े, कच्चे-पक्के सभी फलोंका अन्तमें विनाश होता है। इसी तरह इस संसारमें बालक-युवा, स्त्री-पुरुष कोई भी हों, कालचक्रसे किसीको छुटकारा नहीं मिलता। राजा-रंक सभीके सिरपर कालचक्र घूमता रहता है और आगे-पीछे सभीको एक दिन मरना ही पड़ता है। मेरे पुत्रके इस जीवनके दिन पूरे हो गये होंगे, इससे वह परब्रह्म परमात्माके धाममें चला गया। जब हमलोगोंके दिन पूरे होंगे, तब हम भी चले जायँगे। व्यर्थ शोक करनेमें क्या लाभ है? अवश्य ही संसारके व्यवहारके अनुसार हमलोगोंका भोजन करने बैठना अनुचित था; परंतु आपको भूखा लौटा देनेमें अधर्म समझकर ही हमने ऐसा किया। अतएव महाराज! आप शान्त होइये। भगवान्‌ने गीतामें यही कहा है कि जो मरे हुए और अवश्य मरनेवाले प्राणियोंके लिये शोक नहीं करता, वही पण्डित है।'

दीनबन्धुदासका उत्तर सुनकर संन्यासी मन-ही-मन हँसने लगे, उन्होंने प्रकटमें कुछ भी उत्तर नहीं दिया। फिर दीनबन्धुकी

स्त्री मालतीसे वे कहने लगे—'अरे! तेरा हृदय भी कितना कठोर है, तू तो माता है। माताका तो पुत्रपर बड़ा ही स्नेह हुआ करता है, यह स्वाभाविक नियम है। इतनेपर भी तुझे पुत्रके मरणका कोई शोक नहीं हुआ, यह कितनी भारी कठोरता है।'

मालतीने संन्यासीको प्रणाम करके नम्रतासे कहा—'पिताजी! आप ज्ञानी हैं, मैं आपसे क्या कहूँ? परंतु जब आप पूछते ही हैं तो अपने मनका भाव आपके सामने प्रकट करती हूँ। जबतक पुत्र जीवित था तबतक इस शरीरके सम्बन्धके नाते मैं उसे अत्यन्त प्यार करती थी। वह मेरे हृदयका टुकड़ा था; परंतु अब मरनेपर उससे मेरा वस्तुतः कोई सम्बन्ध नहीं रह गया। जन्म-मृत्यु शरीरका धर्म है। जो जन्मेगा वह जरूर मरेगा। फिर संसारके सम्बन्धका आरोप सच्चा समझकर हम क्यों शोक करें? कुम्हार अपने चाकपर मिट्टीका लोधा रखकर भाँति-भाँतिके बरतन बनाता है, तरह-तरहके घट गढ़ता है। इसी प्रकार संसार भी मायाका खेल है। माया अनेक प्रकारकी रचना कर रही है। कुम्हारके चाकसे कुछ बरतन ठीक उतरते हैं; कुछ उसी समय नष्ट हो जाते हैं; जो बचते हैं उनमें कितने ही आँवेमें टूट-फूट जाते है, परंतु कुम्हार उनके लिये कोई शोक नहीं करता, फिर मुझको ही पुत्रके लिये क्यों शोक करना चाहिये? इस असार संसारमें सब कुछ स्वप्नवत् है। यहाँ नित्यसम्बन्ध किसका है? पखेरुओंके समूहके समान रातको पेड़पर सब इकट्ठे होते हैं, सबेरा होते ही सब अपनी-अपनी दिशाको उड़ जाते हैं; इसी प्रकार मनुष्यकी दशा है। यहाँ एक-दूसरेका जो सम्बन्ध दिखायी देता है, सो सब मायाकी लीला है। अतएव मुझे कुछ भी शोक नहीं है। शोक तो मनुष्यके मनको प्रभु-भक्तिसे दूर

हटाता है, जिसका मन भगवान्‌में लगा है, जिसके मनमें आनन्दमय भगवान् बसते हैं, उसको शोक क्यों होगा?'

दीनबन्धुकी पत्नी मालतीकी बातें सुनकर संन्यासीजीको बहुत ही संतोष हुआ। इसके बाद उन्होंने दीनबन्धुदासके छोटे पुत्रको बुलाकर उससे कहा—'अरे भाई! मालूम होता है, तू तो बड़े ही कठिन कलेजेका है या तेरे मनमें कोई कुभावना भरी है। तुलसीदासजीने कहा है—'**मिलहि न जगत सहोदर भ्राता**'। तू आज उस सहोदर भाईके मरणपर तनिक भी शोक नहीं करता। सच है, आजकल दुनियामें भाईका भाई कौन होता है, सब स्वार्थके सगे हैं; परंतु तू भोजन करनेके लिये बैठ गया, तुझे जरा भी शरम नहीं आयी। तेरे-जैसा अज्ञानी, मूर्ख, निर्दय और पापी जगत्‌में और कौन होगा?'

बालकने हाथ जोड़कर कहा—'स्वामिन्! मैं नन्हा-सा बच्चा आपको क्या जवाब दूँ। वास्तवमें जगत्‌की दृष्टिसे आप मुझपर चाहे सो दोषारोपण कर सकते हैं और संदेह स्थापन कर सकते हैं। पर आप तो ज्ञानी हैं, क्या आप कह सकते हैं कि जगत्‌का यह सम्बन्ध सत्य है? आज जो बड़ा भाई है, पता नहीं वह कितनी बार छोटा भाई बना होगा। फिर यह तो इसी जीवनका नाता है न। जन्मसे पहले भी कोई नाता नहीं था और उसके बाद भी कोई नाता नहीं रहता। बीचका नाता होता है और वह मृत्युके साथ ही समाप्त हो जाता है। इस मायाके संसारमें सिवा एक श्रीपरमात्माके और सत्य तत्त्व ही क्या है। यह तो मानो एक हाट है। हाटमें अनेक जगहसे व्यापारी लोग माल बेचने आते हैं और किसीके साथ यथार्थमें कुछ भी सम्बन्ध न होनेपर भी सगे भाईके समान सम्बन्ध स्थापित कर परस्पर मिल-जुलकर रहते और हँस-खेलकर अपना व्यापार करते हैं। परंतु जब अपना माल

बिक जाता है या हाट बंद हो जाता है, तब कोई भी किसीकी परवा न कर अपनी-अपनी राह चले जाते हैं। यही इस संसाररूपी हाटकी दशा है। अपना-अपना कर्म भोगनेको जीव आते हैं, यहाँ आकर तरह-तरहके सम्बन्धोंका आरोप कर लेते हैं और कर्म-भोग पूरे होते ही चले जाते हैं। मेरे भाईके कर्म पूरे हो गये थे, इससे वह चला गया; मेरे कर्म-भोग पूरे होते ही मैं भी चला जाऊँगा। जिस व्यापारीका माल नहीं बिकता, भला वह अपनेसे पहले माल बेचकर जानेवाले व्यापारीके साथ हाटसे कैसे चला जायगा। इसी प्रकार मरनेवालेके साथ कोई नहीं मरता। यदि मैं कुछ अनुचित कहता हूँ तो आप मुझे क्षमा करें और उचित बोध देकर कृतार्थ करें।'

ब्राह्मण-कुमारके वचन सुनकर संन्यासीको बड़ा आनन्द हुआ और वे मन-ही-मन उसकी बुद्धि और विवेककी प्रशंसा करने लगे। विवेकवान् पुरुष किस प्रकारसे सांसारिक दुःखोंसे दुःखको प्राप्त नहीं होता, इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण पाकर वे प्रसन्न हो गये। अब दीनबन्धुदासकी पुत्रवधू—मृत पुरुषकी धर्मपत्नीकी परीक्षा शेष रह गयी। उसे पास बुलाकर संन्यासीजी कहने लगे—'बेटी! तेरा बर्ताव तो बड़ा ही दुःखदायक है। संसारमें स्त्रीके लिये पति ही सर्वस्व है, पति बिना स्त्रीका जीवन निरर्थक है, पतिहीना नारीके समान दुःखी प्राणी संसारमें कोई नहीं है; परंतु अच्छे वंशकी लड़की होनेपर भी तेरे आचरण ऐसे निन्दनीय क्योंकर हो गये? आज तेरी आँखोंमें एक भी आँसू नहीं देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। क्या तुझे पतिकी मृत्युका तनिक भी शोक नहीं है। अरे, और जो हुआ सो हुआ, तुझे पतिका मुर्दा घरमें पड़ा रहते खानेके लिये पत्तल परसाते भी लज्जा नहीं आयी। तुझे धिक्कार है!'

संन्यासीके वचन सुनकर धर्मपरायणा विधवाने कहा—'बापजी! आपका कहना बिलकुल सत्य है, स्त्रीके लिये पति ही सर्वस्व है; परन्तु यह तो बतलाइये, संसारमें प्रकृतिस्थ (प्रकृतिमें फँसे हुए) जीवका सच्चा पति कौन है। क्या एक परमात्माके सिवा हम सबका कोई और भी स्वामी है। उसी सच्चे एकमात्र स्वामीकी प्राप्तिके लिये ही तो स्त्री अपने लौकिक पतिको परमेश्वर समझकर परमेश्वराकार-वृत्ति होनेके लिये उसकी सेवा करती है। जब उस परमात्माने अपने प्रतिनिधिरूप पतिको सेवाके लिये मुझे सौंपा था और जबतक उनका मेरे पास रहनेका भगवान्‌का विधान था तबतक उनकी तन-मनसे सेवा करना मेरा धर्म था और मैं अबतक वही यथासाध्य करती भी रही। अब जब उन्होंने अपनी चीजको वापस लेकर मुझे अपनी साक्षात् सेवाका कार्य सौंप दिया, तब बताइये, मैं शोक क्यों करूँ? मुझे तो किसी भी तरह उन प्रभुकी सेवामें नियुक्त रहना है, वे चाहे जैसे सेवा लें। जो आनन्द मनुष्यको विषयकी प्राप्तिमें होना चाहिये, वही उसके विनाशमें भी होना चाहिये; क्योंकि विषय तो कहीं किसी दूसरेके पास आता-जाता नहीं। परमात्माकी चीज परमात्माकी इच्छासे परमात्माकी ही सृष्टिमें घूमा करती है। जब दूसरा कोई स्थान ही नहीं तब कोई उससे बाहर कहाँ जा सकता है? एक ही मालिकको अनेक जगह दूकानें हैं, उनमें कहीं किसी दूकानमें मालकी जरूरत हो और दूसरी दूकानसे मालिक उसे मँगवा लें तो उस दूकानका कार्यकर्ता मुनीम इसके लिये शोक क्यों करे? माल रहेगा मालिककी दूकानमें ही; इसमें नहीं उसमें सही। मुझे जो सुख पतिरूप परमात्माकी सेवा करनेको सधवापनमें था, वही आज पतियोंके पति परमात्माकी सेवा करनेका अवसर पाकर इस वैधव्यमें है, दूसरे आप जानते

हैं यह संसार नाटक है। जबतक अभिनयकर्ता नट स्टेजपर हैं तबतक अपने-अपने स्वाँगके अनुसार अभिनय करते हैं, भाँति-भाँतिके सम्बन्ध स्थापित कर उसीके अनुसार बर्तते हैं, परंतु वास्तवमें उनका परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं होता, सभी उस नाटकके सूत्रधारके इशारेपर नाचनेवाले नट हैं। इसी प्रकार हमलोगोंमेंसे जिसको जो स्वाँग मिला है, उसीके अनुसार हमें बर्तना है। अबतक सधवापनका स्वाँग था, अब वैधव्यका मिल गया। इसमें आपत्ति ही कौन-सी है? रिझाना तो अभिनय करके उस अखिल विश्वके स्वामी प्रभु परमात्माको है, स्वाँग कोई-सा भी हो।

'इसके सिवा एक बात और है, जबतक मनुष्य विषयोंमें फँसा रहता है तबतक वह भगवान्‌का यथार्थ भजन—जो मनुष्य-जीवनका चरम उद्देश्य है—नहीं कर पाता। इसीलिये लोग घर त्यागकर संन्यासी हुआ करते हैं, जिसमें वे सब कुछ छोड़कर भगवान्‌का प्रेमपूर्वक भजन कर सकें। वैधव्य तो संन्यास है, जो भगवान्‌ने कृपापूर्वक अपना भजन करनेके लिये मुझे दिया है। मैं इसके लिये शोक क्यों करूँ? जिन विषयोंका त्याग करना पड़ता है, उनका त्याग अनायास ही हो गया, यह तो एक प्रकारसे परमार्थ-दृष्टिसे सौभाग्यकी ही बात है।'

'हे महाराज! यह संसार उस लीलामय हरिका लीला-क्षेत्र है, इसमें श्रीहरि अनेक प्रकारके खेल खेलते हैं। किसीको हँसाते हैं, किसीको रुलाते हैं, किन्हींको परस्पर मिला देते हैं, किन्हींको बिछुड़ा देते हैं, किसीको सुखी करते हैं, किसीको दुःखी करते हैं। यह सब उस प्रभुकी लीला है। प्रभुकी लीलाको देख-देखकर प्रसन्न होनेवाला मनुष्य उसकी किसी एक लीलाको देखकर शोक क्यों करे?'

'फिर लौकिक दृष्टिसे भी तो रोना उचित नहीं है। जो स्त्री पतिके मरनेपर बहुत अधिक रोती-पीटती है, उसका पति परलोकमें मोहवश ज्यादा दुःखी होता है। मुझे तो पतिदेवने सदा आनन्दमें रहनेकी ही शिक्षा दी थी। इसके सिवा यदि मैं अभी रोनेको बैठ जाती तो मेरे पतिके पूजनीय पिताका अतिथि-सेवाधर्म नष्ट होता, इसलिये भी मुझे शोक करना उचित नहीं था। खानेको तो हमलोग केवल आपके लिये ही बैठे थे, यह बात मेरे पूज्य श्वशुरजी आपसे कह ही चुके हैं।'

'हे पिताजी! भगवान्‌ने गीतामें स्पष्ट कहा है—'आत्मा अजर, अमर, अविनाशी, नित्य, शाश्वत, पुराण है। वह तो कभी मरता नहीं, शरीर नाशवान् है ही, फिर इसके लिये शोक क्यों किया जाय?—इसमें मैंने कोई अनुचित बात कही हो तो आप कृपापूर्वक मुझे अपनी दीना पुत्री जानकर समझानेकी दया करें।'

मृत ब्राह्मणकुमारकी पत्नीके मुखसे ऐसे भक्ति और विवेकमय वचनोंको सुनकर संन्यासी महाराजके आनन्दका पार नहीं रहा। वे मन-ही-मन कहने लगे—'अहो! धन्य है इन चारों जीवोंको! ऐसे ही भक्त मेरी कीर्ति बढ़ानेवाले हैं और संसारके लिये शोभारूप हैं।' तदनन्तर संन्यासीजीने कमण्डलुमेंसे थोड़ा-सा गंगाजल निकाला और एक तुलसीका पत्ता मृतदेहके मुखपर रखकर जल छिड़कते हुए कहा—'बेटा! उठो, जल्दी उठो।'

देखते-ही-देखते मृत शरीरमें जीवनी-शक्तिका पुनः संचार हो आया, ब्राह्मणकुमार नींदसे उठते हुएकी भाँति अँगड़ाई लेता हुआ उठ बैठा और अपने सामने अपूर्व तेजःपुंज संन्यासीमूर्तिको देखकर उनके चरणोंमें लोट गया।

संन्यासीका ऐसा प्रभाव देखकर लोग आश्चर्यमें डूब गये। उनके आनन्दकी सीमा नहीं रही। सभी संन्यासीके चरणोंपर

गिरकर श्रद्धा-भक्तिके आँसुओंसे उनके चरणोंको पखारने लगे और मन-ही-मन विचारने लगे कि ये संन्यासी महाराज कौन हैं?

इसके बाद संन्यासीने सजीवन हुए ब्राह्मणकुमारसे कहा— 'हे ब्राह्मणबालक! आज मैंने यहाँ बड़ा तमाशा देखा, संसारकी स्वार्थपरताका नंगा चित्र मेरे सामने आ गया! तू जिन लोगोंको अपने प्यारे सम्बन्धी तथा आत्मीय मानता है और जो तेरी कमाईपर मौज कर रहे हैं, वे तेरे माता, पिता, भाई—यहाँतक कि तेरी विवाहिता स्त्रीतक, सब-के-सब तुझे मरा जान, तेरे मृत-देहको एक ओर डालकर मेरे साथ भोजन करनेको बैठ गये। दुःखकी बात है कि तेरा ऐसे कठोर हृदयके निर्दयी लोगोंके घरमें जन्म हुआ।'

संन्यासीकी बात सुनकर ब्राह्मणकुमार ने हँसकर कहा— 'देव! ऐसे कुलमें मेरा जन्म हुआ और ऐसे नर-नारी मेरे आत्मीय बने यह तो वस्तुतः मेरे लिये बड़े ही सौभाग्यकी बात है। यह तो इस बातकी सूचना है कि मैं बड़ा ही पुण्यात्मा, योगभ्रष्ट जीव हूँ। भगवान्‌ने गीतामें कहा है कि योगभ्रष्ट पुरुषका ही ज्ञानवान् योगियोंके कुलमें जन्म होता है। ऐसा जन्म श्रीमानोंके कुलमें उत्पन्न होनेकी अपेक्षा भी बहुत दुर्लभ है। भगवान्‌ने दया करके ही मुझे ऐसे माता, पिता, भाई और पत्नी प्रदान किये हैं, जो संसारकी नश्वरता और असारताको समझकर परमात्माके प्रीत्यर्थ जगत्‌में नाटकके पात्रवत् व्यवहार करते हैं। मेरे पिताने मुझको भी यही शिक्षा दी है। आपने जो कुछ कहा उसे सुनकर तो इनके प्रति मेरी श्रद्धा और भी बढ़ गयी है। संसारमें कौन किसका सम्बन्धी है? मान लीजिये घोर ग्रीष्म-ऋतु है, सूर्य तप रहे हैं, मार्गमें कुछ मुसाफिर जा रहे हैं, सूर्यके तापसे और गरमीसे

घबराकर वे कहीं छाया खोज रहे हैं, इतनेमें उन्हें एक पीपलका बड़ा पेड़ दिखायी दिया, सब लोग कुछ विश्राम लेनेके लिये उसकी छायामें बैठ गये। घंटे-दो-घंटे बाद जब धूप कुछ कम हुआ, तब एकके बाद एक सब लोग उठकर अपने-अपने रास्ते चल दिये। राहका वह पेड़ जहाँ-का-तहाँ रह गया। इसी प्रकार यह संसार भी एक वृक्ष है। जैसे मार्गके वृक्षकी छायामें गरमीसे तपे हुए मनुष्य विश्रामके लिये इकट्ठे होते हैं, इसी प्रकार इस संसार-वृक्षके नीचे हजारों मनुष्य अपने-अपने पूर्वजन्मके कर्मानुबन्धसे आकर इकट्ठे होते हैं और एक-दूसरेसे मिलते तथा सम्बन्धका आरोप कर लेते हैं, फिर अपना-अपना कर्म पूरा होते ही—ऋण उतरते ही—चले जाते हैं। एक-दूसरेका देन-लेन चुकने-चुकानेके लिये लोग एकत्र होते हैं और उसके चुकते ही अलग हो जाते हैं। यही संसारका सम्बन्ध है। इस बिछुड़नेमें शोककी कौन-सी बात है? यहाँ तो मनुष्य बिछुड़नेके निश्चित कालको लेकर ही जन्म लेते हैं। जो लोग ऐसा जन्म पाकर श्रीपरमात्माके भजन, सत्संग तथा साधु-सेवामें अपना समय लगाते हैं, उन्हींका जीवन धन्य और कृतार्थ होता है तथा उन्हींकी सारी आशाएँ सफल होती हैं।'

ब्राह्मणकुमारके विचार सुनकर संन्यासी महाराज आनन्दमग्न हो गये और मन-ही-मन सबके विचारोंकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे कि 'ऐसे ही विवेकी पुरुषोंको धारण करके पृथ्वी टिक रही है और इन्हींसे उसकी महिमा है।' इसके अनन्तर संन्यासीजी हँसते हुए बोले—'वत्स दीनबन्धुदास! तुम पाँचों व्यक्तियोंके निष्कपट शुद्ध व्यवहार, विवेक, वैराग्य, अतिथि-सेवाके अनुराग और श्रीहरिकी निष्काम भक्ति देखकर मुझे बहुत ही आनन्द हो रहा है। वास्तवमें तुमलोग धन्य हो, जहाँ

तुमलोगों-जैसा कुटुम्ब है वह देश और वह कुल धन्य है; तुम सभी परम सुखसे जीवन बिताकर इसी जीवनमें मोक्षपदको प्राप्त करोगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है।'

संन्यासी महाराजका शुभाशीर्वाद श्रवण कर सब गद्गद होकर उनके चरणोंमें गिर पड़े। संन्यासीने सबके मस्तकोंपर हाथ रखकर उन्हें उठाया और कहा—'हे भक्तो! तुमलोग सदा-सर्वदा भगवान् विश्वपति श्रीहरिका भजन करते रहना, तुमलोगोंको किसी अवस्थामें कोई भी दुःख प्राप्त नहीं होगा।' संन्यासीके करस्पर्शसे तथा उनकी वाणी सुनकर पाँचों व्यक्तियोंके हृदयमें आनन्दका पार नहीं रहा।

सब-के-सब मन्त्रमुग्धकी भाँति संन्यासीके चरणोंमें पड़े थे, इतनेमें संन्यासीने हँसते हुए फिर गम्भीर वाणीसे कहा—'अच्छा तो अब मैं जाता हूँ। तुम्हारी सारी आपत्ति-विपत्ति, दुःख-शोक, बाधा-विघ्न मैं साथ लिये जाता हूँ। मैं तुम्हें कभी नहीं भूलूँगा। मेरा यह स्वभाव ही है कि मैं अपने प्रेमियोंको कभी भूल नहीं सकता। तुम भी मुझे न भूलना। आजसे मैं तुम्हारा हूँ और तुम सब मेरे हो; इस बातको सदा याद रखना। मैं तुम-सरीखे पुण्यात्मा प्रेमी जनोंकी खोजमें ही रहा करता हूँ। जहाँ ऐसे कोई प्रेमी मिल जाते हैं, वहीं मैं अपनेको बेच देता हूँ, यही मेरा नियम है। लो, अब मैं तुम्हें अपना परिचय देता हूँ। मैं ही विश्वपति-विश्वरमण भगवान् हूँ।'

संन्यासीकी अमृत वाणीके अन्तिम शब्द सुनते ही उन पाँचोंकी मुग्धता भंग हुई, उन्होंने आँखें खोलकर देखा तो सामने कोई नहीं दीखा। संन्यासी महाराजकी दिव्य ज्योतिर्मयी मूर्ति अन्तर्धान हो चुकी थी। वे सब-के-सब व्याकुल हो गये। अपने चिरवांछित परम धनको प्राप्त होकर भी पहचान नहीं सके और एक ही क्षणमें

उसका वियोग हो गया, इस विचारसे उनकी व्याकुलता अत्यन्त बढ़ गयी। वे रोते-रोते प्रभुसे विनय करने लगे—

'हे प्रभो! हे दीनबन्धो!! हे हमारे जीवन-धन!!! तुम हमलोगोंको कठिन हृदयके बतला रहे थे न? पर अब मालूम होता है, तुम-जैसा कठिन हृदय जगत्‌में अन्य कोई नहीं है। जब दर्शन देनेकी इच्छा ही नहीं थी तो क्यों हमें अपना परिचय दिया? एक बार नेत्रभरके हमें अपना विश्वमोहन रूप देख तो लेने देते! तुमने तो मानो हाथमें देकर दिव्य रत्नको वापस छीन लिया। ललचाकर हृदयका धन ले लिया। हे विश्वम्भर! वस्तुतः तुम बड़े मायावी हो, हम पहले जानते कि तुम्हीं संन्यासी बनकर हमारे सामने खड़े हमसे विनोद कर रहे हो तो हम तुम्हें क्यों छोड़ते? पर तुम्हारी मायाको कौन जान सकता है? ब्रह्मादि देवगण भी तुम्हारी मायासे मुग्ध हो जाते हैं, फिर हमलोगोंकी तो बात ही कौन-सी है? परन्तु हे हमारे हृदयधन! अब हमसे तुम्हारे दर्शन बिना रहा नहीं जाता, हृदय फट रहा है। दया करके शीघ्र अपनी भुवन-मन-मोहिनी मधुर छबि दिखलाकर हमें कृतार्थ करो।'

अकस्मात् दिव्य प्रकाश हो गया। भक्तवत्सल भगवान् भक्तोंकी सच्ची पुकार सुनकर अपने मुनिमनहारी अखिल सौन्दर्य-सागर-रूपमें प्रकट हो गये। पाँचों प्राणी अपने चिर अभिलषित परम धनको प्राप्त कर आनन्दनिमग्न और कृतकृत्य हो गये। अब सचमुच भगवान् उनके और वे भगवान्‌के बन गये। इसी प्रकार हरिदर्शन, हरिसेवा और हरि-चर्चामें अपने पुण्य-जीवन बिताकर अन्तमें सबने श्रीहरिके दुर्लभ अभय पदको प्राप्त किया।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

भक्त नारायणदास

बंगालके प्रसिद्ध राजा कीर्तिचन्द्रके राज्यमें पतितपावनी गंगाजीके तटपर नारायणदास निवास करते थे। उनका घर धन-धान्यसे पूर्ण था। वे स्वयं बड़े विद्वान् और सद्‌गुणसम्पन्न थे। भगवद्भक्त होनेके कारण उनमें न तो धनका मद था और न गुणोंका गर्व। बड़े ही शुद्ध चित्त और सरल स्वभावके मनुष्य थे। छोटे-बड़े सबके साथ हँसकर बोलना, किसीपर कभी क्रोध न करना, स्वप्नमें भी पराये धनकी इच्छा न करना, पर-स्त्रीको माताके समान समझना, दिल्लगीमें भी असत्य न बोलना, सबकी सेवा करनेको तैयार रहना और गरीब-दुःखियोंको उदारतासे दान देना—ये सब नारायणदासजीके स्वाभाविक गुण थे। उनकी सरलता और सादगीको देखकर कोई भी नया आदमी यह नहीं पहचान सकता कि वे इतने बड़े श्रीमान् और गुणवान् हैं। घर वैभवसे पूर्ण होनेपर भी किसी वस्तुपर उनकी आसक्ति नहीं थी। वे सब कुछ भगवान्‌का ही समझते और अपने मनको सर्वदा भगवान्‌के चारु चरण-कमलोंमें लगाये रखते थे। नारायणदासजीकी धर्मपत्नी मालती भी परमभक्तिमती, पतिव्रता और सद्‌गुणोंसे युक्त थी। यही तो भक्तोंके लक्षण होते हैं।

सब कुछ होनेपर भी मालतीके मनमें सन्तानहीन होनेका बड़ा ही दुःख था। जबतक भगवान्‌के चरणोंमें पूर्णरूपसे मन अर्पित नहीं हो जाता, तबतक इस जगत्‌में कोई भी मनुष्य किसी भी अवस्थामें सर्वथा सुखी नहीं हो सकता। पूर्ण सुख तो रामका हो जानेमें ही है—

कोई तन दुःखी, कोई मन दुःखी, कोई धन-हित रहत उदास।
थोड़े थोड़े सब दुखी, इक सुखी रामका दास॥

परंतु नारायणदासको इस अभावकी कोई परवा नहीं थी, उनका अन्तःकरण वैराग्यसे भरा था। अवस्था भी ढल चुकी थी, अतः वे कई दिनोंसे संसारका त्याग कर किसी तीर्थ-स्थानमें निवास करनेका विचार कर रहे थे। अन्तमें उन्होंने भगवान् श्रीरामकी जन्मभूमि सुहावनी मोक्ष-प्रदायिनी अयोध्यापुरीमें जाकर शेष जीवन बिताना निश्चय किया। अकेले ही जाना चाहते थे; परंतु पतिपरायणा मालतीके विशेष आग्रह करनेपर उसको भी साथ ले लिया। घरका सब प्रबन्ध ठीक कर आवश्यक सामानको चार बैलोंपर लादकर आप घरसे निकल पड़े। कई नौकरोंने साथ चलना चाहा; पर उन्होंने किसीको साथ नहीं लिया। मालती तो छायाकी तरह पतिके पीछे-पीछे थी ही।

पति-पत्नी अविराम श्रीराम-नामका कीर्तन करते हुए चले जा रहे हैं, स्नान-सन्ध्याके समय मार्गकी धर्मशालाओंमें ठहर जाते हैं और स्नानाहारसे निवृत्त होकर फिर आगे चलते हैं। यों चलते-चलते कुछ दिनोंमें वे चित्रकूटके समीप जा पहुँचे। चित्रकूटको देखकर दम्पतिका हृदय प्रेमसे भर गया; वे भगवान् श्रीरामचन्द्रकी लोक पावनी लीलाके स्थानोंको आदरपूर्वक देखने लगे।

आज उनके आनन्दका पार नहीं है। भगवान्‌की अद्‌भुत लीलाओंका स्मरण कर वे उसमें तन्मय हो गये हैं। चित्रकूटको प्रणाम करके नारायणदासजी कहने लगे—'अहा! धन्य है चित्रकूटको, जहाँ भगवान् श्रीरामने श्रीसीताके साथ घास-पत्तोंकी कुटिया बनाकर निवास किया था। उस समय यह स्थान पवित्रात्मा ऋषि-मुनियोंके आश्रमसे कैसा पूर्ण था? सती-शिरोमणि सीताजीको ऋषि-पत्नियोंके अपूर्व आदर-सत्कारसे कितना आनन्द हुआ होगा? हा! भ्रातृभक्त भरतने श्रीरामको

महाराज दशरथके स्वर्गवासका समाचार यहीं सुनाया था। अहा! इसी पवित्र स्थानपर असीम भ्रातृप्रेमका, पितृभक्तिका, सेवाधर्मका और सत्यनिष्ठाका पवित्र स्रोत बहा था। इसी स्थानपर भरतने अपने जीवनके आधारस्वरूप श्रीरामकी पवित्र चरणपादुकाको प्राप्त किया था। प्यारे चित्रकूट! तू हमारे हृदयनाथ अयोध्यानाथकी लीलाओंको अपने हृदयमें छिपाकर अनेकानेक प्राकृतिक कष्टोंको सहकर उन लीलाओंके स्मारक स्तूपरूपमें यहाँ खड़ा है। हे बन्धु! तू उसी प्रकार उस लीलामयकी लीलाओंका हार पहने अनन्तकालतक यहाँ खड़ा रह और हम-जैसे पापी-तापी मनुष्योंको भगवान्‌की लीलाका स्मरण कराकर धन्य और कृतार्थ करता रह।'

नारायणदास पत्नीसहित कुछ दिनोंतक चित्रकूटमें निवास कर साधु-महात्माओंके दर्शन और उपदेशामृतका पान करते रहे। सत्संग, साधुसेवा, भजन-कीर्तन और अनेक दान-पुण्य करनेके पश्चात्, कितने ही दिनोंके उपरान्त, उन्होंने अयोध्या जानेका विचार किया।

दम्पति बड़े ही भावुक थे। जब-जब भगवान् रामके वनवासकी कथा सुनते, तब-तब उनका हृदय दारुण वेदनासे भर जाता। अतएव उन्होंने अयोध्या जाते समय भावुकतासे विचार किया कि 'हमारे भगवान् श्रीरामचन्द्रको अनेक वनोंमें भटकना पड़ा था और तरह-तरहके कष्ट सहने पड़े थे, इसलिये हमलोगोंको भी टेढ़े-मेढ़े रास्तेसे ही अयोध्या चलना चाहिये कि जिससे वनवासके कष्टोंका अनुभव होता रहे।' यह विचारकर उन्होंने सीधा और सरल मार्ग छोड़ दिया और जहाँ सूर्यकी किरणें भी प्रवेश नहीं कर सकतीं; ऐसे घोर अन्धकारमय पहाड़के बीहड़ रास्तोंसे चलना शुरू किया। कहीं कंकड़, कहीं काँटे, कहीं चढ़ाई, कहीं खाई, कहीं वनके हिंसक पशुओंका

भयंकर शब्द और कहीं पगडंडीका भी अत्यन्त अभाव। इस प्रकारके मार्गपर चलनेमें अच्छे-अच्छे साहसी पुरुषोंका हृदय काँप उठता है, परंतु नारायणदास भगवान्‌की लीलाओंका स्मरण करते हुए निर्भय चित्तसे चले जा रहे हैं। चार बैल और सती मालतीके सिवा उनके साथ प्रत्यक्षमें और कोई नहीं है। अवश्य ही उनके हृदयमें नारायण विराजमान हैं और उन नारायणके अमित बलपर विश्वास कर उन्हींके नामका उच्चस्वरसे गान करते हुए नारायणदास आगे बढ़ रहे हैं। मालती भी हरि-नाम-गानमें तीक्ष्ण मधुर कण्ठसे पतिका साथ दे रही है। गाते-गाते अन्तर्यामीकी करुणामयी मंजुल मूर्ति मानो उनके सामने खड़ी हो गयी। नारायणदास और मालती परम प्रभुकी उस कमनीय मूर्तिका ध्यान करते हुए तन-मनकी सुधि भूलकर अविश्रान्त गतिसे चले जा रहे हैं। अहा! भगवान्‌का कैसा विचित्र प्रभाव है कि उनको हृदयमें धारण करनेसे, निरन्तर उनका ध्यान करनेसे 'यह वस्तु भीषण है, यह भयानक है, यह बुरी है, यह घृणित है, यह कुरूप है, यह असह्य है' आदि भावोंके लिये स्थान ही नहीं रह जाता। सौन्दर्यकी अनन्त राशि भगवान्‌का सौन्दर्य अन्तर्विश्वसे निकलकर सारे बहिर्विश्वमें फैल जाता है और समस्त दृश्य पदार्थोंको भी सौन्दर्यकी निधि बना देता है। फिर चारों ओर दिखता है केवल सुन्दर-ही-सुन्दर! इसीके प्रतापसे आज नारायणदास और मालती भी दसों दिशाओंमें केवल नयनाभिराम रमणीय दृश्य ही देख रहे हैं।

पति-पत्नी चले जा रहे हैं, पर कौन-सा रास्ता अयोध्याको जाता है कौन-सा सीधा है—इस बातका न उन्हें पता है और न उन्हें परवा ही है। कुछ दूर चलनेपर बैलोंकी थकावट मिटानेके लिये वे ठहर जाते हैं और उन्हें चारा चराकर फिर आगे बढ़ते

हैं। यों चलते-चलते एक दिन प्रात:काल वे एक लुटेरे भीलोंके गाँवमें जा पहुँचे। भीलोंसे रास्ता पूछनेका विचार कर ही रहे थे कि कुछ भीलोंकी एक टोली उनके पास आ पहुँची। दुष्ट हिंसाजीवी भीलोंने दूरसे ही उन्हें देखकर सारा माल-मता लूटनेका विचार कर लिया था और इसीसे वे नारायणदासके पास आकर खड़े हो गये। भीलोंमेंसे एकने कपटपूर्ण सरलता और सहानुभूतिका भाव दिखलाकर पूछा—'भाई! तू इस बीहड़ जंगलमें कहाँसे आ गया? कुछ काम हो तो हमसे कह।' नारायणदास तो सभीमें नारायण देखते थे। भीलोंके विनय-वाक्य सुनकर उन्हें बड़ा आनन्द हुआ और वे अपने भावोंके अनुसार उनमें सरलता, दयालुता, सहानुभूति और सेवाके दर्शन कर कहने लगे—'भाईयो! तुमलोगोंके इस सरल और छलहीन बर्तावको देखकर मुझे बड़ा ही आनन्द हुआ है। हमलोग श्रीरघुकुलकमलदिवाकर, अखिल विश्वके कारण, समस्त जीवोंके परम चिन्तामणि, महामहिमान्वित, भक्तकल्पतरु भगवान् श्रीरामजीके दर्शनार्थ अयोध्या जा रहे हैं।'

नारायणदासके शब्द पूरे होने भी नहीं पाये थे कि भील अपने असली भावोंको छिपाकर कहने लगे—'तो फिर तुम इस घोर वनमें कैसे आ पहुँचे? यही अच्छा हुआ कि हम मिल गये। हमलोग भी श्रीअयोध्यानाथका दर्शन करने ही जा रहे हैं, अब तुम्हें कोई डर नहीं। हमारे साथ चले आओ, हम तुम्हारी रक्षा करेंगे।' यों कहकर एक-दूसरेके सामने देखते हुए अपनी सफलतापर प्रसन्न होने लगे, परंतु नारायणदासको उनकी बातें अच्छी नहीं लगीं। जिसके अभय चरण-कमलोंमें आत्मसमर्पण कर नारायणदास निकले थे, उसकी जगह दूसरे किसीको रक्षक बनाना उन्हें नहीं जँचा। इसलिये वे निर्भयतासे कहने लगे—

'भाइयो! अनाथ-नाथ अयोध्याविहारी श्रीरघुनाथ ही हमारे एकमात्र रक्षक हैं, वे जहाँ ले जाते हैं वहीं हमलोग जाते हैं। इसके सिवा हमारे हाथमें कुछ भी नहीं है।' नारायणदासके इन शब्दोंको सुननेपर भी लुटेरे निराश नहीं हुए। उन्होंने सुरमें सुर मिलाकर कहा—'ठीक ही तो है, इस संसारमें दूसरा साथी है ही कौन? रघुवंशशिरोमणि श्रीराम ही तो सबके सहायक हैं। एकमात्र वही संगी हैं। अहा, भक्त! यह बड़ा अच्छा हुआ। हम सभी उस भगवान् रामकी ही शरण हैं। चलो, आनन्दसे उस मंगलमय पतितपावनके धामकी ओर।' कपटियोंके कपटवाक्य सीधे-सादे भक्त-दम्पति नहीं पहचान सके। एकमात्र धर्मके सम्बन्धसे ही वे उनके साथ आगे बढ़ने लगे। चलते-चलते सब एक अगम्य वनमें जा पहुँचे। दुष्टोंने मौका पाकर अपना मनोरथ सफल करना चाहा। एकने कहा—'अरे! अब देखते क्या हो! बना लो अपना काम।' दूसरा बोल उठा—'हाँ, हाँ देर किस बातकी! शीघ्र ही इसका काम तमाम कर जो हो सो लूट लो और मौज करो।' इस प्रकार बातचीत कर दुष्टोंने अपना असली स्वरूप प्रकट किया। नारायणदासके हाथ-पैर बाँधकर मारते-मारते घोर वनमें ले जाकर उन्हें एक गहरी खाईंमें डाल दिया और ऊपरसे बड़े-बड़े पत्थरोंको डालकर कहा—'ले, अब यहीं पड़े-पड़े रामचन्द्रके दर्शन कर।'

नारायणदासका शरीर मारसे जर्जरित हो गया था। हिलने-डुलनेकी भी शक्ति नहीं रही थी। बोलनेकी ताकत भी जाती रही थी, परंतु ऐसी स्थितिमें भी वे मन-ही-मन परमात्माकी प्रार्थना करने लगे—'हे त्रैलोक्य-चिन्तामणि! हे मेरे राम! तुमको नमस्कार है। हे जानकीपति! तुम्हें बार-बार नमस्कार है। हे त्रिलोकीनाथ! इस संसारमें तुम्हीं सर्वत्र व्याप्त हो। कृमि-कीट,

पतंग, चराचर सबके अन्तःकरणमें तुम्हीं रम रहे हो! घट-घटवासी प्रभो! इस अखिल विश्वमें ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ तुम नहीं हो। संसार तुम्हारे ही उदरमें है। इसके अंदर और बाहर जहाँ देखो, वहाँ एक तुम्हीं हो। हे नाथ! तुम जो कुछ ठीक समझो वही करो। तुम्हारे प्रत्येक विधानमें मुझको आनन्द है। हे अचिन्त्य शक्ति भगवन्! मैं तो केवल तुम्हारी शरण हूँ। एक तुम्हारे सिवा मेरा कोई आश्रय नहीं।'

यों मानसिक प्रार्थना करते-करते नारायणदास भगवद्ध्यानमें निमग्न होकर निश्चेष्ट हो गये। दुष्टोंने उन्हें मरा हुआ समझा और वे वहाँसे लौटकर मालतीके पास आये। ईश्वर-रूप पतिकी दुर्गति देखकर मालती मूर्च्छित हुई पृथ्वीपर पड़ी है, उसके केश बिखरे हुए हैं । मालूम होता है मानो शरीरमें प्राण नहीं रहे। नर-राक्षस इसी अवस्थामें उसे घसीटने लगे और बुरी नीयतसे भाँति-भाँतिके अपशब्द बोलने लगे। थोड़ी देरमें मालतीको होश हुआ। दुष्टोंके आचरणसे उसे बहुत दुःख हुआ। भय और क्रोधसे उसका शरीर काँपने लगा। अन्तमें कोई उपाय न देखकर वह सती आँखें मूँदकर कातर स्वरसे भगवान्‌को पुकारने लगी—'हे प्रभो! क्या आप शरणागतके रक्षक नहीं हैं? हे नाथ! मैंने सुना है कि सेवकोंके संरक्षणके लिये ही आपने धनुष-बाण हाथमें ले रखा है, क्या यह सत्य है! क्या अब भी आप वैसे ही हैं। क्या आप शरणमें आये हुए अनाथोंको शरण देते हैं?' मालती इस प्रकार कातर कण्ठसे श्रीहरिको पुकारती हुई विलाप कर ही रही थी कि थोड़ी ही दूरपर एक घुड़सवार आता हुआ दिखायी पड़ा। घोड़ेकी टापकी आवाज सुनते ही सतीका मन आनन्दसे भर गया। उसने भयहारी भगवान् श्रीरामका स्मरण करते-करते देखा कि एक नौजवान सफेद घोड़ेपर सवार हुआ तेजीसे उसकी ओर

बढ़ा चला आ रहा है। देखते-ही-देखते वह मालतीके पास आ पहुँचा। उसका वेष वीर क्षत्रियका-सा था। मस्तकपर सोनेका मुकुट दूसरे सूर्यके समान प्रकाशित हो रहा था। कानोंमें मकरकुण्डल थे, गलेमें कौस्तुभमणि शोभा पा रही थी। हृदयपर पदचिह्न था। दोनों हाथोंमें रत्नकंकण धारण कर रखे थे। अहा! उसकी चम्पककलियों-जैसी सुन्दर अंगुलियोंमें भाँति-भाँतिके रत्नोंकी अँगूठियाँ शोभित हो रही थीं। कमरमें सुन्दर महीन पीताम्बर और उसपर रत्नजटित मेखला थी। नवनीरद-श्याम मेघके समान उसका सुन्दर कलेवर था। कमलके समान सुन्दर विशाल नेत्र थे। लाल-लाल होठोंपर मन्द हँसी छायी हुई थी और प्रतीत होता था मानो उससे अमृतकी वर्षा हो रही है। कमरमें 'यमद्रंष्ट्रा' नामक तलवार लटक रही थी। हाथमें विशाल धनुष था और पीठपर तरकस बँधा हुआ था। उस सुन्दर मनोहर महावीर क्षत्रिय युवकका स्वरूप अत्यन्त ही विलक्षण था, किन्तु आश्चर्य यह था कि सबको उसका रूप एक-सा नहीं दीखता था। उसके वज्रादपि कठोर स्वरूपको देखकर भयसे दुष्टोंके हृदय दहल गये। सबकी जबान बंद हो गयी और वे चारों ओर प्राण लेकर भागने लगे। कौन कहाँ जाता है, इस बातकी सुधि नहीं रही। जिधर बना उधर ही भागने लगे। इस घबराहटमें कुछ गिर पड़े, कुछ पेड़ोंसे टकराकर पड़ गये। कितनोंके सिर फूट गये। कुछके दाँत टूटे। कुछके नाक-कान कट गये। सारांश यह कि ऐसा कोई नहीं बचा जिसके कुछ चोट नहीं आयी हो। परंतु उस वीरका जो स्वरूप उन दुष्टोंको इतना भयानक दीख रहा था, वही तेज:स्वरूप मालतीके लिये अत्यन्त आनन्ददायक हो गया और वह अनिमेष नेत्रोंसे उस रूपमाधुरीका अतृप्त भावसे पान करने लगी। वह वीर घोड़ेसे उतर पड़ा और हँसते-हँसते

सती मालतीके पास जाकर वात्सल्यपूर्ण अमृतमय मधुर शब्दोंमें कहने लगा—'बहिन! तू कहाँ रहती है? तू स्त्री-जाति है, तेरे साथ कोई पुरुष नहीं दीखता। इस घोर वनके रास्ते तू कहाँ जाना चाहती है। तुझे घेरे हुए ये कौन खड़े थे और मुझको देखते ही वे क्यों भाग गये?'

क्षत्रिय वीरके स्नेहपूर्ण वचनोंको सुनकर मालती मन-ही-मन विचार करने लगी। अहा हा! इस नरककी विषम विषज्वालामें ऐसे आनन्दपूर्ण मधुर अमृतकी वर्षा किसने की? बस, बस, मैं जान गयी, दूसरा कोई नहीं है, अवश्य ही यह वीर मेरे रघुवीरका भेजा हुआ है। अहा! निश्चय ही यह उसीकी करुणा-लीला है। प्रेमके प्रबल आवेगके कारण कुछ समयतक तो मालतीके मुखसे कोई शब्द नहीं निकला। वह पत्थरकी मूर्तिकी भाँति आगन्तुक क्षत्रिय वीरको देख रही है और उसके हृदयकी कृतज्ञता नेत्रद्वारोंसे अश्रुरूप होकर बह रही है। अन्तमें बड़े कष्टसे इस भावको रोककर मालतीने उस करुणाकर क्षत्रिय वीरको अपनी सारी कथा आदिसे लेकर अन्ततक कह सुनायी। दुष्टोंने नारायणदासपर जो जुल्म किये थे, उनका वर्णन करनेमें हृदयकी दारुण व्यथासे सती उत्तेजित हो उठी और उस वीरके चरणोंमें लिपटकर ऊँचे स्वरसे कहने लगी—'अरे! तुम कौन हो, यह तो मैं नहीं जानती; किंतु मेरा विश्वास है कि मेरी दुर्दशाको देखकर दु:खहारी भगवान् श्रीरघुवीरने ही तुमको यहाँ भेजा है। मैं नहीं जानती मेरे पतिदेवको ये पापी मारते-मारते कहाँ ले गये हैं। स्वामीको कहीं छोड़कर वे दुष्ट मेरे प्रति ऐसा व्यवहार करने लगे थे मानो मैं कोई वेश्या हूँ। अहा! इतनेमें ही मेरे रघुनाथकी कृपासे तुम यहाँ आ पहुँचे और तुम्हें देखते ही दुष्टोंका दल भाग खड़ा हुआ। भाई! मेरे पति अब जीवित नहीं होंगे, मेरे शरीरमें मानो

प्रलयाग्निकी वर्षा हो रही है। बस, अब कृपा करके तुम एक चिता जला दो। जब कि मुझ-जैसी निराधार कंगाल अबलापर दयाकर तुम यहाँ आये ही तो कृपा करके चिता भी तुम्हीं सुलगा दो। धधकती हुई चितामें प्राणोंकी आहुति देकर मैं अपने अन्तरकी ज्वाला शान्त करूँगी। विषसे ही विषका नाश करूँगी। लो, अब देर न करो।'

सतीका प्रेम और उसकी पतिभक्ति देखकर सीतापति बहुत ही प्रसन्न हुए। वे एक करुणाके निर्झरकी भाँति सुखप्रद करुणरससे मालतीके मन:प्राणोंको शीतल-शान्त करते हुए बोले—'सती! चिन्ता न कर! तेरा पति अभी जीवित है। मैंने अभी इधर आते हुए यह आवाज सुनी थी 'हाय मालती! अब श्रीरामके दर्शनार्थ हमलोगोंका श्रीअयोध्या कैसे जाना होगा?' मैं समझता हूँ कि ये वचन तेरे पतिके ही थे। अतएव तू मेरे साथ चल, वह स्थान यहाँसे बहुत दूर नहीं है।'

पति-विरह और पतिके दु:खदर्शनसे मालतीका शरीर इतना अशक्त हो गया है कि एक कदम चलनेकी भी उसमें ताकत नहीं है। यह स्थिति देखकर भगवान्‌ने कहा—'माता! ले, मेरा हाथ पकड़ ले और मेरे साथ-साथ चली आ। बिलकुल डरना नहीं। तेरे-जैसी पतिव्रता सतीको पतिका चिर-वियोग कभी नहीं हो सकता।' इतना कहकर भव-भयहारी भगवान्‌ने अपना अभय हस्त बढ़ाया। क्षत्रिय वीरके मुखसे निकले हुए 'माता' शब्दने मालतीके मनसे सारे अविश्वासको दूर कर दिया। वह दीनबन्धुका दयालु हाथ पकड़कर साथ-साथ चलने लगी और थोड़ी ही देरमें नारायणदासके पास जा पहुँची। देखती है—मजबूत रस्सीसे पतिके दोनों हाथ बँधे हुए हैं, छातीपर पत्थरकी भारी शिला रखी हुई है। मुँहमें वाणी नहीं है, शरीर निश्चेष्ट और अवश है।

पतिकी यह दुर्दशा देखकर मालती धड़ामसे जमीनपर गिर पड़ी। भगवान्‌ने अपनी अभय वाणीसे आश्वासन देते हुए नारायणदासकी छातीपरसे शिलाको हटा दिया और उसके सारे बन्धन काट डाले। भक्त नारायणदासको अभी बाह्यज्ञान नहीं हुआ, अतएव भगवान् उनके शरीरको हिलाने लगे। भगवान्‌के मुनिजनदुर्लभ श्रीहस्तका स्पर्श होते ही नारायणदासके शरीरमें नये जीवनका स्रोत बहने लगा। उनके मन, प्राण और शरीर सभी जाग्रत् हो उठे। वे यकायक उठ बैठे और आश्चर्यचकित नेत्रोंसे चारों ओर देखने लगे। उन्होंने अपने सामने ही एक दिव्य धनुर्बाणधारी क्षत्रिय वीरके पास अपनी पत्नी मालतीको खड़े हुए देखा।

कुछ देरतक तो नारायणदास इस बातका भी निश्चय न कर सके कि यह स्वप्न है या सत्य। उनके नेत्र श्रीमूर्तिकी रूपमाधुरीमें फँस गये। कुछ समयके बाद विचार करते-करते उन्हें अपनी पूर्वावस्थाका स्मरण हुआ, तब उन्होंने सोचा—'अरे, इस भीषण विपत्तिसे विपदाहारी जानकीनाथके सिवा और कौन बचा सकता है? अहा! ये वही हैं, निश्चय वही हैं, मेरे नाथ रघुवंशनाथ श्रीरामचन्द्रजी ही हैं।' यों विचार करते ही नारायणदास तुरंत श्रीप्रभुके चरणकमलोंमें लिपट गये और प्रेमाश्रुओंसे उनके चरणोंको धोते हुए दोनों हाथ जोड़ विनयपूर्वक कहने लगे—'हे वीर! तुम्हीं मेरे प्राणेश्वर, प्राणाधार हो। तुम्हीं मेरे प्रभु हो, तुम्हीं मेरा मनोरथ पूर्ण करनेवाले परमात्मा हो, तुम्हीं इन सब जीवोंके परम गुरु हो, तुम्हीं मेरे मुकुन्द-मुरारी हो और तुम्हीं सबके आदि—विश्वके मूल—हरि हो! प्रभो! जब कि तुमने कृपापूर्वक प्रकट होकर इस गुलामके सारे बन्धनोंको काट दिया है तब यह परदा हटाकर अपने यथार्थ रूपका दर्शन भी करवा दो मेरे नाथ!'

भक्तके सरल प्रेमभरे वचनोंको सुनकर भक्तवत्सलके लाल-लाल अधरोंमें मन्द मधुर हास्यका विकास हो गया। इस मुसकराहटका कारण केवल यही था कि भगवान् अपने भक्तके सामने छिपकर नहीं रह सके। अब उनकी स्थिति जौहरीके पास अनेक पत्थरोंके साथ रखे हुए हीरेकी-सी हो गयी। चतुर जौहरी जैसे अपने पास रखे हुए कितने और कैसे ही भाँति-भाँतिके रंग-बिरंगे और चमकते हुए पत्थरोंमेंसे हीरेको पहचानकर निकाल लेता है, वैसे ही भक्त भी अपने भगवान्‌को, चाहे वे किसी भी वेषमें हों तुरंत पहचान लेते हैं। मालती और नारायणदास भगवान्‌के विशुद्ध और अनन्य भक्त हैं, वे भगवान्‌के दर्शनार्थ ही सर्वस्व त्यागकर, प्रभुके आधारपर ही घरसे बाहर निकले हैं। ऐसी स्थितिमें भगवान् उन्हें दर्शन दिये बिना कैसे रह सकते हैं। भक्तवत्सलने तुरंत ही उनके सामने अपने दिव्य मधुर रघुनाथमूर्ति धारण की। भगवान्‌के दिव्यरूपका दर्शन करते ही दम्पतिका मन मुग्ध हो गया और नेत्र तृप्त हो गये। वे परम प्रभुको बारम्बार प्रणाम और गद्‌गद कण्ठसे उनकी स्तुति करने लगे। उन्होंने कहा—'हे प्रभो! हे दीनदयालु! बलिहारी! बलिहारी! आपके प्रभुत्वकी बलिहारी है! अहा! हम-जैसे तुच्छ जीवोंके लिये आप इस विषम वनमें पधारे! हा प्रभो! आप-जैसे दयालु प्रभुको छोड़कर पामर मनुष्य किस लाभके लिये दूसरोंकी उपासना करते हैं?'

भक्तोंके विशुद्ध भावको देखकर भगवान् भी मुग्ध हो गये। उन्होंने दिव्य मधुर स्वरसे कहा—'मेरे प्यारे! तुम्हारे विमल प्रेमके कारण मैं तुमलोगोंके अधीन हो गया हूँ। आज मैं तुमलोगोंपर बहुत ही प्रसन्न हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो सो माँग लो। प्रत्येक इच्छा पूर्ण करनेके लिये मैं तैयार हूँ।'

पति-पत्नी अत्यन्त विनीत भावसे कहने लगे—'नाथ! तुम्हारे दर्शनसे हमारी सारी इच्छाएँ पूरी हो गयी हैं। हमको जो कुछ चाहिये था; सो सब मिल गया है। अब हमें किसी वरदानकी जरूरत नहीं; परंतु हे प्रभो! इतना आशीर्वाद अवश्य दो कि जिससे तुम निरन्तर हमारे अन्तरमें विचरण करो और हम सदा तुम्हारे ध्यानमें निमग्न रहें और सदा-सर्वदा तुम्हारे दिव्य स्वरूपका दर्शन करते रहें।' भगवान्ने 'तथास्तु' कहते हुए यह भी कहा कि 'जाओ, अयोध्यामें जाकर शेष जीवन मेरी सेवामें व्यतीत करो और देह छोड़नेपर मेरे परम धाममें चले आओ।' इतना कहकर अन्तर्यामी अन्तर्धान हो गये। नारायणदास और मालती प्रभुको असंख्य प्रणामकर और उनकी आज्ञाको सिर चढ़ाकर गद्‌गद कण्ठसे प्रभुकी महिमा गाते-गाते प्रभुकी कृपासे थोड़े ही दिनोंमें निर्विघ्न अयोध्या जा पहुँचे और वहाँ एक छोटी-सी पर्णकुटी बाँधकर भगवद्भजन और साधु-सेवामें अपना शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करने लगे। अन्तमें देह छोड़कर दोनों भगवान् श्रीरामके अभय चरण-कमलोंमें अचल स्थान प्राप्तकर सदाके लिये कृतार्थ हो गये।

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय!

बन्धु महान्ति

उड़ीसा जिलेके याजपुर गाँवमें बन्धु महान्ति रहता था; उसके घरमें पतिपरायणा धर्मपत्नी, एक बालक और दो बालिकाएँ थीं। बन्धु बड़ा ही गरीब था, भीख ही उसकी आजीविका थी, परंतु भीख माँगकर धन जोड़ना और रुपये जमीनमें गाड़ रखना उसका काम नहीं था। वह गाँवमें जाता, आजभरके खानेके लिये अन्न मिल जाता तो लौट आता और उसे लाकर पत्नीको दे देता। उसी अन्नसे अतिथि-सेवा होती, बच्चोंको खिलाया-पिलाया जाता; शेषमें कुछ बच रहता तो दोनों खा लेते, नहीं तो हरिका नाम लेकर उपवासी रह जाते। बाहरसे देखनेपर बन्धु-परिवारकी स्थिति बड़ी ही कष्टपूर्ण प्रतीत होती थी, परंतु उसके हृदयमें लेशमात्र भी क्लेश नहीं था। भगवान्‌में अटल विश्वास और प्रगाढ़ प्रेमने उसके अन्तस्तलको बड़ा ही मधुमय बना रखा था। दोनों स्त्री-पुरुष दिन-रात भगवान्‌के स्मरणमें लगे रहते थे। भगवान्‌का नाम ही उनके लिये महामन्त्र था, भगवान्‌के भक्त ही उनके प्रत्यक्ष देवता थे। भगवान् और भक्तोंका प्रसाद ही उनके लिये उत्तम आहार था और उनका चरणोदक ही उनके मन सर्वव्याधिनाशक महौषधि थी। उनको किसी भी वस्तुकी चाह नहीं थी, वे विषयी मनुष्योंकी दृष्टिमें, संचयहीन दरिद्र भिखारी होनेपर भी मनमें महाधनी थे, बादशाहोंके बादशाह थे। सच है—

चाह गयी, चिन्ता गयी मनुआँ बेपरवाह।
जिनको कछु ना चाहिये सो जग शाहनशाह॥

—बड़ा सम्राट् है, परंतु उसका हृदय यदि चिन्तानलसे दग्ध हो रहा है तो वह भिखारीसे भी बढ़कर दुःखी है। इधर जो चाहसे छूटा हुआ निःस्पृही पुरुष है, वह कंगाल होनेपर भी परम धनवान्

है। बादशाह उसके चरणोंमें आकर चाहे सिर झुकावे, वह किसी बादशाहके दरवाजेपर नहीं जाता। फिर जिसके पास भजनरूपी धन हो, सारे ऐश्वर्यके आधार ईश्वरका जिसको आश्रय हो, उसकी तो बात ही निराली है। इसी कारण बन्धु महान्ति दरिद्र होनेपर भी परम सुखी है। उसकी टूटी मड़ैया, फूटी हँड़िया, फटा कन्था, सौ-सौ गाँठ लगी हुई धोती और जीर्ण शरीरके आवरणको भेदकर अंदरकी ओर देखनेसे पता लगता है, मानो विश्वका सारा आनन्द उसीके अधिकारमें आ गया है, समस्त आनन्द केवल उसीकी सम्पत्ति बन गयी है—

जाके पल्ले श्याम-धन ता-सम धनी न कोय।
चिन्तन ही करतो रहै, तन-मनकी सुधि खोय॥

(१)

देशमें भयानक अकाल पड़ा। खेतोंमें अनाज नहीं, जंगलमें घास नहीं और कुएँ-तालाबोंमें पानी नहीं। चारों ओर हाहाकार मच गया। कहीं भीख नहीं मिलती; तीन दिन हो गये, बन्धुपरिवार उपवास कर रहा है। बन्धु और उसकी पत्नीको अपने लिये तो कोई क्षोभ नहीं है, परंतु बच्चोंकी बिलबिलाहटसे माताका हृदय कभी-कभी काँप जाता है। सतीने पतिसे कहा— 'स्वामिन्! मेरे तो नैहरमें कोई भी नहीं रहा है, जिससे कुछ सहायता मिल सके; परंतु क्या आपके भी कोई बन्धु-बान्धव नहीं हैं? यदि कहीं हों तो वहाँ चले चलिये। बच्चोंको दो मुट्ठी अन्न मिल जायगा तो दुर्भिक्षके दारुण दिन किसी तरह कट जायँगे।'

बन्धुने उत्तरमें कहा—'सति! मेरा इस जगत्में तो कोई भी आत्मीय स्वजन नहीं है। हाँ, एक हृदयके मित्र हैं, परंतु वे रहते हैं बहुत दूर, यहाँसे पूरे पाँच दिनका रास्ता है। हमलोग यदि

उनके पास पहुँच जायँ तो हमारी सारी भूख सदाके लिये मिट सकती है। अहा! उनका नाम ही कितना मीठा है। प्रिये! मेरे उन बन्धुका नाम है दीनबन्धु, वे हम-सरीखे दीनोंके प्रति बड़ा ही प्रेम करते हैं।'

सतीको पतिके वचनोंसे बड़ा सुख मिला, उसने हर्षावेशमें आकर कहा—'नाथ! पाँच दिनोंका पथ है? तो क्या है चलिये, वहाँ दीनबन्धुके दरबारमें जाकर अपना सारा दारिद्र्य-दुःख सदाके लिये दूर कर लें। छोटे बच्चेको आप कंधेपर उठाइये, छोटी लड़कीको मैं लेती हूँ, बड़ी लड़की पैदल चली जायगी। सामान तो कुछ है ही नहीं जो उठाना पड़ेगा। पाँच ही दिन तो हैं, घास-पत्ते खाते-खाते पहुँच ही जायँगे।'

बन्धुने मुसकराकर इशारेसे सम्मति दे दी, पत्नी घरके अंदर गयी। इधर बन्धु मन-ही-मन भगवान्‌से प्रार्थना करने लगा—'प्रभो! मेरे नाथ!! तुम अन्तर्यामी हो, घट-घटकी जानते हो। मैं क्यों देश छोड़कर जा रहा हूँ, तुमसे कुछ भी छिपा नहीं है। प्रभो! तुम्हारा प्रेम ही मुझे खींचे लिये जा रहा है। बहुत दिनोंसे तुम्हारे चरणदर्शनकी अभिलाषा थी। आज इस दुर्भिक्षरूपी बन्धुकी सहायतासे जगद्‌बन्धुके दर्शनका मनोरथ सफल होगा। मृत्युके भयसे देश छोड़ना तो पागलोंका काम है, मृत्यु कहाँ नहीं है? संसारमें तुम्हारी सत्तासे शून्य ऐसा कौन-सा स्थान है, जहाँ तुम मृत्युरूपसे क्रीड़ा नहीं करते। क्या अन्न न मिलनेके कारण कोई भगवान्‌का विश्वासी कहीं जाता है? नाथ! तुम विश्वम्भर हो, जल-थलमें सबका पेट भरते हो; समुद्रके अंदर रहनेवाले, पहाड़के क्षुद्र कीड़ेकी भी सुधि तुम लेते हो; ऐसे विश्वम्भरको पाकर तुम्हारी सत्ता और महत्ताको समझकर कौन ऐसा है जो पेटके लिये दर-दर दौड़ेगा? भाँति-भाँतिके पाप करेगा? यह तो

अविश्वासी मनुष्योंका काम है, जो तुम्हारे विश्वम्भरपनको न मानकर पेटके लिये पाप करते हैं। मेरे नाथ! मैं तो आज इन लोगोंको लेकर तुम्हारी मनमोहिनी छबि देखनेके लिये जा रहा हूँ। मेरे नाथ! वह दिन कब होगा, जब मुझे तुम्हारे चरणकमलोंके दर्शनका सौभाग्य मिलेगा। ऐसा होगा तो मैं समझूँगा कि यह दुर्भिक्ष मेरा बड़ा ही हितकारी बन्धु है, जिसने सर्वकल्याणमयी तुम्हारी श्रीमूर्तिका मुझे दर्शन कराया। नाथ! आशीर्वाद दो, जिससे नीलाचल पहुँचकर तुम्हारे सुर-मुनि-वन्दित चरणोंके दर्शन कर सकूँ।'

इतनेमें स्त्री बच्चोंको लेकर बाहर आ गयी। बन्धुने फटे कन्थेकी गँठरी सिरपर रखी, लोटा हाथमें लिया, बच्चेको कन्धेपर बैठाया और 'श्रीहरि, हरि' कहकर चल पड़ा। पत्नी छोटी लड़कीको कन्धेपर उठाकर और बड़ीकी अँगुली पकड़ पीछे-पीछे चलने लगी।

रास्तेमें कहीं अन्न नहीं मिला। साग-पात खाकर ही काम चलाया गया। बन्धुको तो भूख-प्यासकी खबर ही नहीं है, वह तो प्रियतमके मिलनार्थ शीघ्र दौड़ जाना चाहता है, परंतु भूखे स्त्री-बच्चोंको साथ रखनेके कारण वैसा कर नहीं पाता। पाँचवें दिन सन्ध्या होते-होते बन्धु परिवारसहित श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र (पुरी)-में पहुँचा। श्रीमन्दिरके दूरसे ही दर्शन कर वह गद्‌गद हो गया। और बोला—'सति! वह देखो, मेरे प्यारे बन्धु दीनबन्धुका मन्दिर दिखायी पड़ता है।' पतिके वचन सुनकर पत्नीके शरीरमें भी बल आ गया। उसने सोचा, अब बच्चोंके प्राण अवश्य बच जायँगे। नवीन आशासे उसका हृदय भर गया। मलिन मुख सहसा खिल उठा। देखते-ही-देखते सब सिंहद्वारके सामने आ पहुँचे। आनन्दके आवेशमें सारी थकावट दूर हो गयी।

(२)

सिंहद्वारपर बड़ी भीड़ है, इस समय भूखे स्त्री-बच्चोंको साथ लेकर भीतर जाना असम्भव समझकर बन्धुने दूरसे ही भगवान् जगत्-बन्धुके दर्शन किये और मन्दिरके दक्षिणकी ओर पेजनाले (फेन बाहर निकलनेके नाले)-के पास लाकर सबको बैठा दिया। थोड़ी देर बाद स्त्रीने कहा—'स्वामिन्! बन्धुके घर आकर भी इस पेजनालेपर क्यों बैठे हो? देखो, सन्ध्या हो गयी है, अभी घोर अन्धकार सारे धरती-आकाशपर छा जायगा, तब इन बच्चोंको लेकर कहाँ जाओगे? एक बार अपने बन्धुसे मिल तो आओ, कुछ मिले तो लाकर इन बच्चोंके प्राण बचाओ।'

एक बार द्वापरयुगमें सुदामाकी भोली पत्नीने भी दरिद्रताके कारण दुःखी होकर पतिदेवको उनके बन्धुवर श्रीद्वारकाधीशजीके समीप भेजा था। उसकी पुनरावृत्ति यहाँ भी हो रही है। दृढ़निश्चयी बन्धुने मन-ही-मन सोचा—'तुच्छ आहारकी कामनासे दीनबन्धुके पास जाना उचित नहीं, सबेरे मन्दिर खुलनेपर दर्शनार्थ जाऊँगा।' अतएव उसने कहा—'सति! हमलोग बड़े कुअवसरसे आये हैं। इस समय बन्धुसे भेंट होना बड़ा कठिन है। आज अनेक जगहसे—दूर-दूरसे—उनके और भी बहुत-से मित्र आये हैं, उनकी भीड़के मारे मन्दिरमें प्रवेश करना कठिन हो रहा है। आज यदि पेजपानी (नालेका फेन) पीकर रात बिताओ तो सबेरे एकान्तमें बन्धुसे मिलकर सारी बातें कहूँगा।'

आदर्श पतिव्रताके मनमें पतिकी बात जँच गयी, उसने कहा—'अच्छी बात है, अभी फेनसे ही काम चलाया जाय।' बन्धु कहींसे एक फूटी हँड़िया उठा लाया और फेनके कुण्डमें, उसे डुबो-डुबोकर पत्नीको देने लगा। स्त्रीने तीनों बच्चोंको पिलाया और खुद भी पेट भर पिया। आह अन्नकी कद्र भूखे

ही जानते हैं। जिनको अधिक खानेके कारण मन्दाग्नि हुई रहती है उन्हें भूखकी व्याकुलता का पता नहीं। आज इन भूखे प्राणियोंको यह फेन कितना मीठा लगता है, कैसे अमृतका स्वाद देता है, इस बातका दूसरोंको अनुभव ही नहीं हो सकता। फिर यह तो भगवान्‌के प्रसादका फेन था। इसमें तो महान् माधुरी होनी ही चाहिये।

स्त्री-बच्चोंका पेट भर गया, वे सो गये। इधर बन्धु महान्ति प्रेमपूर्ण हृदयसे अपने बन्धुका चिन्तन करने लगा, उसने मन-ही-मन कहा—

'मेरे नाथ! तुम्हारे चरणोंमें नमस्कार है, तुम सारे चराचरमें व्याप्त हो, तुम्हीं सब जीवोंके मनोरथ पूर्ण करते हो, इस जगत्‌में तुम्हारे सिवा और कोई भी स्वतन्त्र कर्ता नहीं है। तुम बड़े कृपालु हो; जीवोंपर कृपा करना ही तुम्हारा कार्य है। मेरे मनमें कोई कामना हो तो उसे दूर कर दो और ऐसी कृपा करो, जिससे मैं तुम्हारी कृपाके दर्शन प्रतिपल कर सकूँ। स्त्रीसे कह दिया है, सबेरे तुमसे मिलकर सारी दुःख-कहानी सुनाऊँगा। परंतु नाथ! 'मैं क्या सुनाऊँ! तुम सभी तो जानते हो।' यों प्रार्थना करते-करते बन्धु महान्ति ध्यानस्थ हो गया।

इधर श्रीजगन्नाथजीकी सेवा समाप्त हुई, पुष्पांजलि दी गयी, सेज बिछी, प्रभु सोये, भण्डारीने भण्डारमें ताला लगाया, पण्डोंने मन्दिर-द्वारपर रस्सी बाँधकर उसपर मुहर लगा दी। मशालें जल गयीं, मन्दिरमेंसे सब कोई बाहर चले गये, चारों ओर किवाड़ लग गये, सब दरवाजोंपर ताले लग गये, सेवकगण अपने-अपने घर जाकर निद्रामग्न हो गये।

सब सो गये, परंतु भक्तवत्सल भगवान्‌को नींद नहीं आयी। भक्तकी करुणाजनक स्थितिका खयाल आ जानेसे उनके लिये

सुकोमल शय्यापर सोना और जगन्माता श्रीलक्ष्मीजीसे सेवा कराना भार हो गया। वे उठे और तुरंत भण्डारमें आये। '**अणोरणीयान् महतो महीयान्**' के लिये कौन बड़ी बात थी! भण्डारसे रत्नथाल निकाला, उसमें पहलेसे ही बचाकर रखा हुआ छप्पन भोग-प्रसाद सजाया और स्वयं एक ब्राह्मणके वेशमें दक्षिणद्वारके बाहर आकर पुकारने लगे—'बन्धु ओ बन्धु!!'

पुकार सुनकर बन्धुकी आँखें खुलीं। उसने सोचा, इतनी रातको मुझे कौन पुकारने आवेगा? किसी दूसरेका नाम 'बन्धु' होगा, फिर सोचा कि कहीं प्रभु तो नहीं आ गये, परंतु निश्चय किये बिना बोलना उचित नहीं समझा।

फिर 'बन्धु, बन्धु' की आवाज आयी, स्त्रीने जगकर पतिको जगाते हुए कहा—'सुनिये तो कौन पुकार रहा है?' बन्धु बोले—'मुझे कौन पुकारेगा, क्या पुरीमें किसी दूसरेका नाम बन्धु नहीं हो सकता? सो रहो, घबराओ नहीं।'

पतिकी आज्ञा पाकर स्त्री सो गयी। अन्तर्यामी भगवान्ने भक्तके मनकी बात जानकर फिर ऊँचे स्वरसे पुकारा, परन्तु इस बार केवल 'बन्धु' नहीं कहा। आप बोले—'ओ याजपुरिया बन्धु! ओ, ओ पेजनालेपर सपरिवार भूखे पड़े हुए बन्धु! उठो भाई! यहाँ आओ। मैं तुम्हारे लिये प्रसाद लिये खड़ा हूँ।'

बन्धुने जब सुना, उसका शरीर पुलकित हो गया। उसने सोचा—'क्या सचमुच मुझे दीनबन्धु पुकार रहे हैं? मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ। नहीं स्वप्न तो नहीं है। वह फिर पुकार रहे हैं। उनके बिना मुझे कौन पहचानता? कौन सबकी स्थिति जानता है? अवश्य वही हैं।' यह विचारकर हड़बड़ाता हुआ बन्धु उठा, देखता है तो एक ब्राह्मण रत्नथाल लिये खड़ा है। बन्धुके सामने जाते ही ब्राह्मणने कहा—

'आनेमें क्या इतनी देर की जाती है? पुकारते-पुकारते मेरा गला छिल गया। देखो न थालके बोझसे मेरे हाथ थर-थर काँप रहे हैं। यह थाल लो, जाओ आज इसीसे काम चलाओ, कलसे तुम्हारे रहने-खानेका सारा प्रबन्ध हो जायगा। कोई चिन्ता न करो, सुखसे खाकर सो रहो।'

बन्धु महान्ति तो मन्त्रमुग्धकी भाँति हो गया, वह चकित नेत्रोंसे देखता ही रह गया, आज्ञानुसार उसने थाल ले लिया परन्तु कुछ नहीं बोल सका। साहस करके कुछ कहना चाहता था, इतनेमें ही ब्राह्मण-वेषधारी भगवान् अन्तर्धान हो गये। बन्धु जड़ पत्थरकी तरह वहीं खड़ा रह गया। न मालूम यह दशा कितनी देर रही! तदनन्तर उसने मतवालेकी भाँति झूमते हुए पेजनालेके पास आकर स्त्री-बच्चोंको जगाया। सबने मिलकर परमानन्दसे महाप्रसादका भोजन किया। प्रसाद खाते ही सारी भूख सदाके लिये मिट गयी। जल लेकर स्त्रीने थाल धोया, बन्धु थाल लौटानेको उसे लेकर सिंहद्वारतक गया, परन्तु वहाँ किसीको न देखकर वापस लौट आया और उसे एक फटे-पुराने चिथड़ेमें लपेट अपने सिरहाने रखकर सो गया। और तो सबको नींद आ गयी, परन्तु बन्धुकी अवस्था कुछ विलक्षण ही है, वह अवस्था न नींदकी है और न जाग्रत्की ही। वह मोहालस्यसे अतीत, तामस सुखसे परेकी आत्मानन्दसे उद्भासित एक महानन्दकी मादकता है। जिसे यह अवस्था प्राप्त होती है, वही इसका आनन्द जानता है। भगवान्का रत्नथाल आज बन्धुके लिये भगवान्का रूप हो रहा है और वह उसे कभी हृदयसे लगाता है, कभी मस्तकपर रखता है, कभी नेत्रोंसे स्पर्श करता है। धीरे-धीरे आनन्द-मदिराका नशा बढ़ता ही गया। उसका शरीर अवश हो गया और थालपर सिर रखकर वह अचेत होकर गिर पड़ा।

(३)

प्रात:काल भगवान्‌का मन्दिर खुला, सेवक अपने-अपने काममें लगे और भण्डारीने भण्डार खोला तो देखते ही उसके होश हवा हो गये। सारी चीजें अस्त-व्यस्त पड़ी हैं। प्रभुका बहुमूल्य रत्नथाल नहीं है। उसने हल्ला मचाया, सब लोग इकट्ठे हो गये। थालकी खोज होने लगी। न मालूम किस-किसपर सन्देह हुआ और इस निमित्तसे पूर्वकर्मके भोगवश किस-किसपर मार पड़ी। चारों ओर शोर मच गया। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते कुछ लोग पेजनालेके पास आये, देखा तो थालपर सिर रखे एक आदमी सो रहा है, उसके पास एक स्त्री और तीन बच्चे भी सोते हैं। 'पकड़ो, पकड़ो' की पुकार मच गयी थी। बन्धु परिवारसहित जागा और सामने ही लाल-लाल आँखोंवाली विकराल मूर्तियोंको देखकर दंग रह गया। पूछनेका भी अवसर नहीं मिला, गालियों और थप्पड़ोंकी बौछार होने लगी। स्त्री-बच्चे रोने लगे, परन्तु परम विश्वासी बन्धु अचल-अटलरूपसे 'गोविन्द', 'गोविन्द' पुकार रहा है। इस शरीरसे मानो उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं है। शरीरके सुख-दु:ख मानो उसपर कोई असर ही नहीं कर रहे हैं। कैसे करते? वह तो परमात्माके प्रेमानन्द-सागरमें डूब रहा है। महान् आनन्दमें सराबोर हो रहा है। परमानन्दरूप बन रहा है, उसे इन बाह्य दु:खोंसे क्या मतलब है।

यस्मिन्स्थितो न दु:खेन गुरुणापि विचाल्यते॥

बन्धु पकड़ लिया गया, कोतवालके पूछनेपर उसने सारी कथा सच-सच सुना दी कि इस तरह रातको एक ब्राह्मण इस रत्नथालमें मुझे महाप्रसाद दे गया था। परंतु बाहरके पुजारी इस अन्तरंग प्रेमकी बातपर कैसे विश्वास करते? उन्होंने बच्चोंसमेत दोनों स्त्री-पुरुषको कैदखाने भेज दिया। हाथ-पैरोंमें हथकड़ी-

बेड़ी डाल दी गयी। उसने मन-ही-मन सोचा कि 'यह भी मेरे प्रभुकी लीला है। वह मेरी परीक्षा करता है कि मैं कहीं दुःखमें पड़कर उसे भूल तो नहीं जाऊँगा। परंतु नाथ! तुम्हारी की हुई परीक्षामें कौन उत्तीर्ण हो सकता है? हाँ, तुम ही बल दो तो कोई बड़ी बात नहीं। मेरे मनमें बस तुम्हारा स्मरण बना रहे, तुम्हारी माधुरी मूर्ति सदा अन्तरमें नाचती रहे, फिर चाहे जो कुछ भी हो।' कविने प्रेमीकी दशा बतलाते हुए क्या ही सुन्दर कहा है—

तौक पहिराओ, पाँव बेड़ी लै भराओ, गाढ़े
बन्धन बँधाओ औ खिंचाओ काँची खालसों।
विष लै पिलाओ, तापै मूठ भी चलाओ, माँझ-
धारमें डुबाओ बाँधि पत्थर कपालसों॥
बिच्छू लै बिछाओ, तापै मोहि लै सुलाओ, फेरि
आग भी लगाओ बाँधि कापड़ दुसालसों।
गिरितें गिराओ, काले नागतें डसाओ, हा, हा!
प्रीति ना छुड़ाओ गिरधारी नंदलालसों॥

लोग आते हैं और दो-चार गालियाँ सुनाकर चले जाते हैं। बन्धुके स्त्री-पुत्र कातर स्वरसे रो रहे हैं। बन्धु उन्हें समझाते हैं। उनके मुखमण्डलपर आनन्द छाया है। मुखसे अनवरत 'गोविन्द-गोविन्द' की ध्वनि हो रही है। उस ईश्वरविश्वासी भक्तके हृदयमें तनिक भी क्षोभ नहीं है।

बन्धुने मन-ही-मन कहा—'देव! मैं बड़ा ही पापी हूँ' महान् अपराधी हूँ, मुझे जो दण्ड मिल रहा है, वह मेरे पापका ही फल है। नाथ! तुम्हारी महान् कृपा है। मेरे नाथ! चाहे जैसे रखो, परंतु रखो नित्य अपने चरणोंमें। यह ध्यान रखो कि तुम्हारे सिवा मुझे और कोई शरण नहीं है। जो कुछ हो सो केवल एक तुम्हीं हो, मैं केवल एक तुम्हें ही जानता हूँ।

(४)

दिन बीत गया। मन्दिर बंद हो गया, परंतु श्रीजगन्नाथको आज ही सारी व्यवस्था करनी है। राजा प्रतापरुद्र खुरदा (Khorda) नामक स्थानमें अपने महलमें सोये हैं। राजा भगवान्‌के बड़े ही भक्त हैं। भगवान्‌ने आज इसी निमित्त उन्हें स्वप्नमें दर्शन दिये और कर्कश स्वरसे कहा—'राजन्! मेरी आज्ञा सुनो। अरे, मेरा भक्त भूखसे तड़पता हुआ याजपुरसे चलकर पाँच दिनोंमें स्त्री-बच्चोंसहित मेरे नगरमें आया, तेरे कर्मचारियोंद्वारा अतिथिका सत्कार होना चाहिये था, परंतु किसीने उससे कुछ भी नहीं पूछा। वह भूखा पड़ा रहा, तब मैं स्वयं अपने रत्नथालमें प्रसाद रखकर उसे दे आया। रत्नथाल तो मेरा था, उसमें तेरा या तेरे बापका क्या था? मैं उसे दे आया, वह मेरा भक्त है। इसपर तेरे सेवकोंने उसे मारा-पीटा, उस बेचारेने सारी घटना सच-सच सुना दी, परंतु उन लोगोंने उसकी एक भी नहीं सुनी और उसे चोर बतलाकर मारते-मारते कैदखानेमें ले गये। वहाँ बेड़ी-हथकड़ी डालकर उसे पटक दिया। अब तू यदि अपना भला चाहता है तो अभी जाकर उसे मुक्त कर और पूरे सम्मानके साथ उसका सारा प्रबन्ध कर। आजसे मन्दिरके हिसाब-रक्षकके पदपर उसीकी नियुक्ति कर दे। देर न कर! मैं स्वयं नीलाचलनाथ नारायण तुझे यह आदेश कर रहा हूँ।'

भगवान् इतना कहकर अन्तर्धान हो गये। राजा हड़बड़ाकर उठा, उसी समय घोड़ा मँगवाया और सीधा पुरीके कारागारमें पहुँचा। वहाँ जाकर देखा कि स्वप्नकी बात रत्ती-रत्ती सच्ची है। उसने अपने हाथों बन्धुकी बेड़ी-हथकड़ी खोली और बड़े ही सम्मानके साथ उसे हृदयसे लगा लिया और करुण

बेड़ी डाल दी गयी। उसने मन-ही-मन सोचा कि 'यह भी मेरे प्रभुकी लीला है। वह मेरी परीक्षा करता है कि मैं कहीं दुःखमें पड़कर उसे भूल तो नहीं जाऊँगा। परंतु नाथ! तुम्हारी की हुई परीक्षामें कौन उत्तीर्ण हो सकता है? हाँ, तुम ही बल दो तो कोई बड़ी बात नहीं। मेरे मनमें बस तुम्हारा स्मरण बना रहे, तुम्हारी माधुरी मूर्ति सदा अन्तरमें नाचती रहे, फिर चाहे जो कुछ भी हो।' कविने प्रेमीकी दशा बतलाते हुए क्या ही सुन्दर कहा है—

तौक पहिराओ, पाँव बेड़ी लै भराओ, गाढ़े
बन्धन बँधाओ औ खिंचाओ काँची खालसों।
विष लै पिलाओ, तापै मूठ भी चलाओ, माँझ-
धारमें डुबाओ बाँधि पत्थर कपालसों॥
बिच्छू लै बिछाओ, तापै मोहि लै सुलाओ, फेरि
आग भी लगाओ बाँधि कापड़ दुसालसों।
गिरितें गिराओ, काले नागतें डसाओ, हा, हा!
प्रीति ना छुड़ाओ गिरधारी नंदलालसों॥

लोग आते हैं और दो-चार गालियाँ सुनाकर चले जाते हैं। बन्धुके स्त्री-पुत्र कातर स्वरसे रो रहे हैं। बन्धु उन्हें समझाते हैं। उनके मुखमण्डलपर आनन्द छाया है। मुखसे अनवरत 'गोविन्द-गोविन्द' की ध्वनि हो रही है। उस ईश्वरविश्वासी भक्तके हृदयमें तनिक भी क्षोभ नहीं है।

बन्धुने मन-ही-मन कहा—'देव! मैं बड़ा ही पापी हूँ' महान् अपराधी हूँ, मुझे जो दण्ड मिल रहा है, वह मेरे पापका ही फल है। नाथ! तुम्हारी महान् कृपा है। मेरे नाथ! चाहे जैसे रखो, परंतु रखो नित्य अपने चरणोंमें। यह ध्यान रखो कि तुम्हारे सिवा मुझे और कोई शरण नहीं है। जो कुछ हो सो केवल एक तुम्हीं हो, मैं केवल एक तुम्हें ही जानता हूँ।

बन्धु वहीं रहने लगा। बाहर और भीतर भगवान्‌के नित्य दर्शन प्राप्तकर वह कृतार्थ हो गया। धन्य बन्धु, तुमको और तुम्हारे दीनबन्धुको! आज दीनबन्धुकी कृपासे बन्धु महापुरुष हो गया। जगद्‌बन्धु जिसके बन्धु हैं, उसके लिये सभी कुछ सम्भव है। श्रीजगन्नाथजीके आय-व्ययका हिसाब अबतक श्रीबन्धु महान्तिके वंशज ही करते आते हैं।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!